# लंदन जो कभी नहीं सोता

(यात्रा संस्मरण)

## लेखक की अन्य रचनाएं

1. मैं था जज का अर्दली (आत्मकथा) पंजाबी, तेलगु, कन्नड़, उर्दू और अंग्रेजी में अनुवाद
2. न्यायपालिका डायरी (भाग–I)
3. अदालतनामा (1)
4. सुप्रीम कोर्ट के पंजाबी जज
5. Living Legends of Punjabi Culture
6. London Never Sleep
7. पंजाब की कोकिला–सुरिंद्र कौर
8. वो था जट यमला
9. बड़ों की चौपाल

**इनके अतिरिक्त लेखक की बयालीस पुस्तकें पंजाबी में भी प्रकाशित हुई हैं।**

# लंदन जो कभी नहीं सोता

( यात्रा संस्मरण )

निंदर घुगियाणवी

शिलालेख पब्लिशर्स, दिल्ली-110032

**LANDAN JO KABHI NAHI SOTA by Ninder Ghugianvi**
V.P.O. Ghugiana Distt. Faridkot-151203 (Punjab)
email : ninder_ghugianvi@yahoo.com
Ph: +91-94174-21700

ISBN : 978-81-7329-475-0
© : लेखक
प्रथम संस्करण : 2018
मूल्य : ₹ 250
आवरण : प्रवीण राज
प्रकाशक : शिलालेख पब्लिशर्स
4/32, सुभाष गली, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032
email : shilalekhbooks@rediffmail.com
info@shilalekhbooks.com
फोन : 011-22303184
कम्पोजिंग : गणपति कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रक : बी. के. आफसैट, दिल्ली-110032

# अनुक्रम


| | |
|---|---|
| यात्रा संस्मरण यूँ लिखा यह | 7 |
| रंग तमाशे लंदन में | 15 |
| लंदन जो कभी नहीं सोता | 18 |
| विलायत में घूमते हुए | 21 |
| अजीब ज़िंदगी है विलायतियों की! | 28 |
| चैलटनम में चार दिन | 31 |
| विलियम शेक्सपियर के घर | 34 |
| आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय | 35 |
| एक साज़ की मौत | 37 |
| चुप्पी के आगोश में | 42 |
| विलायती बैसाखियां | 46 |
| वाईन में व्हिस्की | 54 |
| स्वर्गां नू जाण हड्डियां... | 62 |
| विलायत अंकल-देसी धक्के | 68 |
| ओत्थे मां नईयो मिलनी.... | 79 |
| विलायती अदालतों का एक चक्कर | 89 |
| विलायती पाठक और लेखक | 96 |
| नकारी किताबें! | 99 |
| कैलाशपुरी के आलिंगन में | 105 |

# *यात्रा संस्मरण यूँ लिखा यह*

विलायत घूमने पहली बार मैं 2005 में गया था। लगभग तीन महीने रहा। उस समय घूम फिर न सका क्योंकि मैं साउथहाल के एक रेडियो स्टेशन के बुलावे पर पंजाबी लोकगीत संबंधी फीचर तैयार करके गया था। रेडियो स्टेशन के ऊपर मेरा ठिकाना था। एक बड़ा कमरा–गुसलखाना, रसोई अटैच। सुबह जल्द जाग जाता था। चाय पीकर नहाता और स्टूडियो में आकर बैठ जाता। बाहर के मौसम का मुझे पता न लगता धूप है, वर्षा हो रही है या ठंडी हवा बह रही है। शाम को स्टूडियो से निकल कमरे में जाता तो ही मालूम होता कि रात हो चुकी है। घड़ी भी नहीं बांधता था।

रात को रेडवाईन का एक बड़ा गिलास लेता, आधे घंटे के लिए रसोई में जाता, खाना बनाने और खाने के बाद ईमेल चैक करता, तब तक नींद आ घेरती।

तीन महीने में दो बार साउथहाल से बर्मिंघम गया था कोच में बैठकर। एक शाम कवैंटरी लेखक सभा के समागम में गया था। चाहने वाले पाठक एवं जानकार लोगों से भी न मिल सका और हाथ जोड़कर माफी माँग ली। वह विलायत यात्रा घुटी–घुटी रही।

और फिर पाँच साल बाद 2010 में मैं किसी संस्था से बंधकर न गया, संपूर्ण रूप से आजाद था। सारा समय मित्र–मंडली के लिए ही था। मर्जी से जाना–आना, कोई पूछने वाला नहीं था। चार माह से ज्यादा घूमता फिरता रहा। विभिन्न रंग देखे, कई शहर घूमे। हरियाली मन मोह लेती। पत्थरों में उगे वृक्ष कुछ कहने को मजबूर करते। वर्मिंघम से लगभग 45 मील दूर स्थित एक गाँव चैलटम मुझे कभी नहीं भूलता। शांत, खुला, हरा–भरा चैलटम। वहाँ जिनके यहाँ मैं ठहरा था, बिन बताए एक दिन घर से निकल गया घूमने। बड़ी दूर निकल गया। धूम बड़ी आनंददायक थी। आगे, और आगे जाने को मन करता गया। एक झील

किनारे पहुँचा। चांदी जैसा पानी अपनी ओर खींच रहा था। झील की ओर पता नहीं कोई क्यों नहीं आया था। लगता था लोग काम पर निकल गये होंगे। कुछ दूर एक जोड़ा पत्थर पर बैठा अपने आप में मस्त था। मैं उनसे उल्टी दिशा में चल दिया। काफी दूर जाकर जूते उतारे, एक पत्थर पर बैठकर पानी में पैर डाल दिए। तन-मन शीतल हो गया। मैं अपने आप पर मंत्रमुग्ध हुआ महसूस कर रहा था। केवल और केवल पानी की आवाज़...कल...कल...कल...ही सुनाई दे रही थी। नजदीकी पत्थर में से अपने आप पानी की लहरे फूट निकलतीं...मुस्कुरातीं और आगे बहते पानी में जा मिलतीं। मैं देर तक पानी की सुरीली आवाज़ का आनंद लेता रहा और बाद दोपहर हल्का फूल होकर घर पहुँचा।

लिखने, पढ़ने, सुनने-सुनाने से लेकर गाने-बजाने के लिए भरपूर समय था। अपने पाठकों, प्रशंसकों में घिरा रहा। बहुत गहरा विचार विमर्श भी होता है और हल्का-फुल्का भी। बहुत बार दिल उदास भी हुआ और खुश भी। बाहरी तौर पर हँसने वालों से हँस लेता और दिल से रोने वालों के साथ रो लेता। लगता जैसे विलायत में सारे रोते दिल से हैं और हँसते ऊपर से हैं, खाली खाली सा। कभी मैं परदेस में महसूस करता, कभी बिल्कुल अपने गाँव सा। कभी मन करता बहुत रह लिया, वापस चला जाए तो कभी कुछ दिन और रुकने का मन करता। सभी अपने-अपने से लगते, बाहरी कोई नहीं। सोचता, कितने अच्छे लोग हैं, सच सच बताने वाले। ये मेरे क्या लगते हैं? क्या रिश्ता है मेरे से? कितना अपनापन जताते हैं, हमारे खून के रिश्तों से भी ज्यादा।

भारतीयों के जनजीवन को नजदीक से देखा। पुराने गये भारतीय तथा अभी अभी विद्यार्थी वीज़ा पर गये नौजवानों के दुखने विभिन्न प्रकार के थे। कुछ बातें नोट करता रहता था। जब फुर्सत मिलती, कम्प्यूटर पर टाईप कर लेता। यात्रा में अपनी डायरी के पन्ने भी लिखे और सफर की यादें भी। लंदन के लेखकों के साथ भी घूमा और उनकी आपसी रंजिश का मजा भी लिया। कई महफिलों में संगीतकारों से संगीत, गीतकारों से गीत, कवियों से कविताएं, विलायती गाने व गीत गूँजे। लेखक एक दूजे की चुगली करके पेट हल्का करते देखे सुने। दो पैर चलता, पब आ जाता। ठंडी बियर कलेजे में ठंड पहुँचाती। अपने

आप में मस्त लोग सिगरेटों के लंबे-लंबे कश खींचते। झीमे सुर में बातें करते और मुस्कुराहटें बांटते। पबों-क्लबों, सिनेमा, कला भवनों और गुरु घरों में मेरा खूब दिल लगता।

बेरोक चलते मार्गों के शोर ने कानों का पीछा न छोड़ा। किसी घर के पिछवाड़े पेड़ पर कोई अजीब पंछी कूकता और उड़ जाता। मैं पंछी की आवाज़ और, और सुनने का भरसक प्रयास करता। फ्रीज़र तथा हीटरों की घूं-घूं और सां-सां तथा पुलिस की गाड़ी का सायरन तब बहुत उदास करते, जब किसी घर में मैं अकेला होता। कभी सुबह जल्दी उठ बैठता तो घर से बाहर निकलता, शांत व एक-से खड़े घर भी ठंडे और उदास लगते। ओस से ढकी कारें आपस में फँसके खड़ी होतीं। कई कई दिन बारिश न हटती, किनमिन किनमिन होती रहती। कभी कभी किसी पार्क में चला जाता।

एक दिन आर्ट गैलरी गया। प्रसन्नचित्त जब चार घंटे बाद बाहर निकला तो बारिश तेज हो गई थी। लोग छतरियाँ लिये फिर रहे थे। एक छज्जे के नीचे खड़ा हो गया। पास ही कबूतरों का एक जोड़ा सहमा-सा जुड़ कर बैठा था जिसने मेरे दिल में प्यार की तरंग छेड़ दी।

वहाँ खुले-खुले सुन्दर पर सूने घरों के उदास नग़मे सुने। इस बारे में मैंने बहुत गंभीरता से सोचा था, जब मैं और जौहर अंकल पब की ओर चले तो अंकल ने कमरे में टीवी चलता रहने दिया। मैंने पूछा कि टीवी बंद करना भूल गये हो आप। अंकल ने कहा कि घर से जाते समय अीवी ऑफ नहीं करता, सूना घर खाने को पड़ता है। डर-सा लगता है अकेलेपन से। जब दरवाजा खोलने पर टीवी की आवाज़ कानों में पड़ती है तो लगता है कि घर में कोई बात कर रहा है। ऐसे घर कर सूनापन दूर भगाने की कोशिश करते हैं। यही अगर घर का कोई जीव, या बच्चा बातें करें तो स्वाद ही आ जाए। सो भाईयो, मेरे पीछे से मेरा कमरा और टीवी आपस में बातें करते महसूस होते हैं तो घर में किसी के होने का एहसास जागता रहता है।

मेरे पिता की उम्र के संधू साहब ने एक बात कही, ''हाँ ठीक है...हम आये यहां, मशीन के साथ मशीन होते रहे, विलायत ने हमें बहुत कुछ दिया और हमने भी विलायत को बहुत कुछ दिया। अगर

भारतीय लोगों ने सख्त से सख्त काम करके इस देश की खुशहाली में अपना बड़ा हिस्सा डाला है, वह अन्य लोगों ने नहीं डाला। हमने खूब कमाई की, हर प्रकार की सुविधा भी यहाँ पाई। परन्तु इस सब के लिए जो कुर्बान हमें करना पड़ा, क्या किसी ने इस संबंध में गंभीरता से सोचा है? यह सब पाने के लिए हमने जो कुछ गँवाया है, क्या कभी हमें वापस मिलेगा? हम कमाने आये थे पर गवाँ कर जा रहे हैं। जब हमने अपनी नसल ही बदलवा ली तो पीछे हमारे क्या रह गया? जब हमारी मातृभाषा और संस्कृति ही नहीं हमारे पास तो और क्या है हमारे पास? क्या हम जायदाद बनाने और पौंड कमाने आए थे बस...?''

संधू अंकल की कही बात बहुत अलग कोण से थी और गंभीर विचार की मांग करती थी। यह सोचने वाली बात थी। ऐसी बातें एन.आर.आई. कान्फ्रेंसों में क्यों नहीं होतीं?

एक घर में मैं अकेला था। घर का मालिक बूढ़ा जोड़ा दो दिनों के लिए घर घर मेरे हवाले करके गया था। मैनेजर के पिछवाड़े पेड़ के नीचे बैठना चाहा। पतझड़ पूरे जोर पर थी। कहर ढा रही दोपहर थी। मैं अध-सूखे घास पर बैठ गया। मेरे पास में एक टेढ़े-मेढ़े पेड़ पर एक अनजाना पंछी कूका–कुमाओ ओ...कुआओ ओ...जैसे वह शोर मचा रहा हो, अकेलेपन से पीछे छुड़ाने के लिए खुशामद कर रहा हो। पंछी की दर्द भरी हूक मेरे कलेजे में आग लगा गई। मुझे विलायत रूखा-रूखा, पराया-सा लगने लगा। मुझे रोना आ गया। मैं झट उठकर कमरे में आ गया।

विलायत में 'सीज़नल अफैक्टिव डिसओर्डर' (Seasonal, Affective Disorder) नाम की बीमारी के दिन कलाकार व लेखक के लिए बड़े उदास होते हैं। डाक्टर इन दिनों में उन्हें घर में रहने की हिदायत देते हैं। घर में गाढ़े रंग के परदे करो, हल्की रोशनी जलाओ। कोई किताब देखते हुए या फिल्म देखते हुए रोना आ जाता है।

पतझड़ की शुरुआत के साथ दिन छोटे होने लगते हैं। नाज़ुक तबीयत या संवेदनशील लोगों पर यह बीमारी हमला करती है, सितंबर से मार्च तक। यूरोप में यह बीमारी आम है। इसके मरीज़ मौसम में न चाहते हुए भी उदास हो जाते हैं। धुंधला माहौल ओर भी हानिकारक

होता है। यदि मरीज़ चौकन्ना न हो तो डिप्रेशन में भी जा सकता है।

मार्च के शुरू होते ही यह बीमारी अपने आप ठीक होने लगती है। बहार का मौसम शुरू हो जाता है। फूल-पत्ते खिलते हैं। मरीज़ अपने आप को अच्छे मूड में महसूस करता है। कलाकार व लेखकों के लिए यह समय बहुत ही क्रिटिकल (Critical) होता है।

विलायत यात्रा के समय मैं भांति-भांति के लोगों को जी भर कर मिला। इनमें बुजुर्ग औरतें तथा बाबे थे जो अकेले रह रहे थे। वहाँ पुराने बसें अनपढ़, अधेड़ तथा लड़के-लड़कियां भी थे, कुछ वे लोग भी जिनके पति-पत्नी के रिश्ते विलायत में तार-तार हो चुके थे, लोग जो अपने खून के रिश्तों से ठगे गए। ऐसे लोग जब हिचकी ले लेकर अपनी दास्तान सुनाते तो मैं काँप जाता था। ठंडी धारती पर तपते फिरते लोग ग़मों की गीत गाते लगते।

बहुत सी महफिलों व समागमों में गया। बातें करते-करते लोग तरसते भारत को। हर एक आदमी-औरत के भांति-भांति के दुखड़े थे, भांति-भांति की कहानियां। मैं सुनता, कई बार आंखें नम हो जातीं, उन पर तरस आता। ऐसे में बहुत सारे लोगों से मैं नज़दीक से तथा दिल से जुड़ गया।

यहाँ मैं यह बात ज़रूर कह दूँ कि जैसे जैसे भारत में ज़मीनों के भाव आसमान छू रहे हैं, विशेषकर शहरों के आसपास, वैसे वैसे उधर के एवं इधर के लोगों के दिलों की खाई और बढ़ी है। रिश्ते में दरार बना दी है इस अनोखी तरक्की ने। इधर के लोग सोचते हैं कि उधर वालों को कुछ नहीं देना, वो तो पहले ही डालर और पौंड के कारण अमीर हैं। उधर (प्रवासी) वाले सोचते हैं कि भारत में भाव बढ़ गए हैं, बेचकर इधर और ले लें नहीं तो दब जाएगा सब। बहुत से लोगों को अपनी कोठी और ज़मीन छुड़वानी बहुत मुश्किल हो गई है। सो प्रवासी लोगों के झगड़े कचहरियों और दफ्तरों में बढ़ गए हैं। ऐसी फाइलों के ढेर ऊँचे होते जा रहे हैं।

साल के प्रारंभ में प्रवासी कांफ्रेंस होती है। 2013 में हुई कांफ्रेंस में एक प्रवासी पत्रकार ने दो महत्वपूर्ण बातें कहीं जो यहाँ बतानी आवश्यक है। उसने कहा कि जब हम विलायत से यहाँ आते हैं तो हमें

बड़ा चाव होता है कि हम अपने वतन जा रहे हैं। हम बड़े खुश होते हैं परन्तु वहाँ पले-बढ़े हुए हमारे साथ आये बच्चे वतन आते समय उदास होते हैं। वापसी में हम उदास होते हैं और वो बच्चे खुश कि अपने वतन वापस जा रहे हैं।

उस पत्रकार भाई ने बताया कि मैं अपने परिवार को श्री हरिमंदिर साहब, अमृतसर ले गया। वहाँ बेटे से कहा कि यह स्थान बड़ा पवित्र है, यहाँ माँगी मुराद पूरी होती है। तू भी कुछ माँग ले। जब बाहर आये तो बेटे से पूछा कि क्या माँगा। उसने कहा कि व्यक्तिगत विशिज़ तो मैं नहीं बता सकता पर एक विश मैंने मांगी कि अगले जनम में मेरा और मेरे पिता का देश एक ही हो।

मैं महसूस करता हूँ कि विलायत एक सपना है, किसी के लिए सच और किसी के लिए झूठा, किसी के लिए कड़वा और किसी के लिए मीठा, किसी के लिए कल्पना और किसी के लिए यथार्थ है।

भारत और विलायत में रोशनी और अंधेरे जैसा फर्क मैंने शिद्दत से महसूस किया। गोरा पंजाबी को पूछेगा, ''मैं तेरी क्या मदद करूँ?'' पंजाबी गोरे को कहेगा, ''तू बता, मैं कैसे परेशान करूँ तुझे।'' जैसे अंधेरे में आदमी औरत के साथ सोता है पर रोशनी में शरीफ बन जाता है।

इतना फर्क है प्यारो।

लो, एक किस्सा और सुनो!

थिंद अंकल का घर सरकर ने 36 पौंड प्रति महीना किराये पर लेकर एक मुसलमान परिवार को दे दिया। मुसलमान भाई ने सरकार को निवेदन किया कि वह बेरोजगार है, कोई कमाई नहीं है ऊपर से चार बच्चे हैं। सरकार उसे और परिवार को दो हजार पौंड अलग से, खाने पीने के लिए देने लगी। इस प्रकार वह परिवार सरकार को साढ़े पाँच हजार में पड़ता है। सरकार सोचती है कि वह उन्हें चार बच्चे पाल कर दे रहा है। यदि सरकार एक बंदा रखकर स्वयं पालन-पोषण करे तो ज्यादा महंगा पड़ेगा। सरकार सोचती है कि हमने बचत की और मुफ्त में बंदा मिल गया बच्चे पालने वाला। उधर भाई सोचता है कि वह सरकार को लूट रहा है। यदि वह स्वयं काम करेगा तो ज्यादा से ज्यादा दो हजार पौंड कमा सकेगा और कुछ उसकी घरवाली कमा लेगी। पर

निठल्ले बैठने की मौज कहाँ मिलेगी! दोनों एक दूसरे को पागल समझ रहे हैं और वक्त काट रहे हैं।

एक दिन मैं अपने पाठक मित्र संघे के घर गया। अभी बैठे ही थे कि संघे का बेटा काम परसे आया (वहाँ का पला-बढ़ा हुआ) हाँफता, थका-सा था। संघे ने कहा, ''बेटा गैरी, ये देख, मेरे मित्र हैं, इंडिया से आए हैं, लेखक हैं। इन्होंने अपनी संस्कृति संबंधी बहुत पुस्तकें लिखी हैं।

गैरी ने मेरी ओर देखकर सरसरी तौर पर मुस्कराया और कहा, ''ओके! गुड या।''

संघे ने कहा, ''बेटा, तुम भी अपनी भाषा सीखो।''

बेटे ने हैरान-परेशान होकर पिता की ओर देखकर कहा, ''किसलिए डैड? हमें भाषा सीखने की कोई जरूरत नहीं। किसलिए सीखें? हमने इंडिया जाना नहीं, हमारे कार्यस्थल पर कोई ये भाषा बोलता नहीं और न ही मैं अपने दोस्तों से बोलता हूँ। हमें जरूरत ही नहीं। घर पर तुम्हारे साथ जरूरत भर बोल लेते हैं। फिर किसलिए सीखें डैड?''

बेटे की बात सुनकर अंकल का चेहरा उतर गया और उन्होंने मुँह ऐसे घुमा लिया जैसे कद्दुओं के व्यापार में घाटा पड़ गया हो।

संघे अंकल का बेटा ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में पढ़ता था। मुझे याद आया कि इस यूनीवर्सिटी की स्थापना 1096 में हो गई थी। मैं इस बारे में कितनी ही देर काफी कुछ सोचता रहा कि हे मेरे भगवान! कैसे दिन होंगे वो। सालों साल निकल गए।

उन लोगों के लिए मैं एक बात इस लेख में स्पष्ट कर दूँ कि जो प्रवासी विलायत में खुश हैं और खुशहाल भी, उनकी गिनती बहुत थोड़ी है। मैं तो बहुतायत की बात कर रहा हूँ। इन लोगों ने अन्तर्रात्मा से बताया और मैंने अन्तर्रात्मा से लिखा। मेरी मंशा विलायत को बदनाम करने या नीचा दिखाने की बिल्कुल नहीं।

मैंने अपना विलायती सफरनामा सरसरी तौर पर नहीं लिखा, दिल से लिखा है। जैसे, जहाँ से, जो, जैसा लगा, वर्णन किया। अगर मैं लोगों की राय ले-लेकर लिखता तो ये मुझसे कभी भी न होता। मैंने उलझे रहना था। अगर मैं विलायती लोगों की सलाह से लिखता तो फिर और भी उलझ जाता।

मैं पांच बार कैनेडा गया। पहली बार 2001 में, फिर 2003, 2005, 2008 और फिर 2014 में। हर बार टोरंटो से होता हुआ वैंकूवर, कैलगरी, विनीपैग, ओटावा, एडमिंटन तथा अन्य छोटे कस्बे-शहरों शिकोमस, ऐब्सफोर्ड, मेरट, मिशन, मोंट्रीयल गया। पहली बार जब गया तब कुछ लेख लिखे। तब सरसरी तौर पर लिखे, समय की यादों के कुछ टुकड़े जो अपने-आप ही लिखे गए। 'चक्कर कनेडा का' रोज़ाना 'जग बाणी', जालन्धर सहित कई समाचार पत्रों में छपे। ये विद्वान पाठकों के लिए चाहे महत्वहीन नहीं थे, पर आम पाठकों ने इन्हें खासा पसन्द किया। दूर-पास से, जाने-अनजाने पाठकों के संदेश आते तो पूछते, ''कब छपेगी किताब? कहाँ से मिलेगी?'' काफी वक्त बीतने पर ख्याल आया कि इन लेखों को छाँट लूँ तो दोबारा पढ़कर कुछ चुनींदा लेख बना लूँ। करने पर मुझे लगा कि ऐसा करने में मैं कुछ कुछ सफल हो गया हूँ। उन लेखों की अलग पुस्तक न बनाकर इस पुस्तक का ही हिस्सा बना लिया है।

*निंदर घुगियाणवी*
मोबाइल : 94174-21700
ईमेल : ninder-ghugianvi@yahoo.com

# रंग तमाशे लंदन में

बूढ़े अंकल ने अपने बेटे को फोन किया था, 'बेटा घर गैस्ट आया है...चाय पत्ती खत्म हो गयी है...काम खत्म करके आते वक्त लेते आना...ब्रैड भी लानी है।'

लड़के ने साफ ही कह दिया था, 'डैड, मेरे पास बिलकुल वक्त नहीं.. आपका मेहमान आया है...तो यह आपकी सिरदर्दी है...जो सामान चाहिए, वह आप खुद ले आओ...मैं खुद बाहर से खाकर आऊंगा...।' अंकल ने सिर्फ इतना कहा था, 'ओके बेटा, धन्यवाद।'

मैं और अंकल घर से बाहर आ गये थे। अंकल कह रहे थे, 'बेटा यहां किसी को किसी की चिंता नहीं...मेरे बेटे ने साफ ही कह दिया है कि तेरा गैस्ट आया है...उसके लिए तुमने ही लाना है...जो कुछ भी लाना है...चल हम ले आते हैं।'

हम पांच-सात मिनट चलते रहे और बस स्टैंड आ गया। दो मिनट भी खड़ा नहीं होना पड़ा कि दो-मंजिला लाल बस आ गई और हम ऊपरी मंजिल में जा बैठे। लगा कि जैसे सड़क वाले झूले पर बैठ गये हैं। दस मिनट के सफर के बाद एक बाजार में जा उतरे। ब्रैड व चाय पत्ती के पैकेट लिए। अंकल ने कहा, 'ले अब लगे हाथ कुछ सब्जी भी ले जाते हैं।' उन्होंने दो बड़े बैंगन उठाये और लिफाफे में डाल लिये। हरी मिर्चें, धनिया व अदरक भी उठा कर अलग-अलग लिफाफों में डाले, पैसे दिये और घर वापिस आ गये।

विलायत की अनोखी व तेज़ रफ्तार मशीनी जिंदगी के बारे में वहां पुराने बसे हुए लोगों के अनुभव व तजुर्बे बहुत भिन्न व भांति-भांति के हैं। बूढ़े अंकल की पत्नी को गुज़रे हुए पंद्रह वर्ष बीत चुके थे। बाकी बच्चे बड़ी देर से अलग-अलग अपने-अपने ठिकानों पर जा चुके थे और अंकल का छोटा बेटा ही उसके पास रहता था। उसकी उम्र भी अब चालीस से पार हो चली थी, गोरी से शादी हुई थी, जो सिर्फ दो महीने ही निभ सकी। फिर और विवाह करने के बारे में उसने हामी अभी तक नहीं भरी। अंकल ने उसे एक दो बार

कहा था और एक दिन उसने कह ही दिया कि डैड मेरी निजी जिंदगी का अहम फैसला मैं खुद करूंगा। उस दिन के बाद अंकल ने उसे कभी शादी के लिए नहीं कहा। उसके बाकी बहन भाई भी उसे शादी के लिए नहीं कहते थे। लड़के के स्वभाव में दिनों-दिन तलखी आती जा रही थी। वह अंदर ही अंदर तलखी पीता रहता। चुप ही रहता था। अपने पिता के साथ वह हफ्ते में एक-आध बार ही जरूरत पड़ने पर बोलता था। उन दोनों का आमना-सामना भी सप्ताह में ज्यादा से ज्यादा चार-पांच बार ही होता। जब वह काम से आता तो अंकल सो रहे होते थे और जब दोपहर को वह काम पर जाता तो अंकल डे-सैंटर गये होते थे। अंकल रात को रोटी नहीं खाते थे। थोड़ा सलाद व स्कॉच का मोटा सा पैग बना कर पीते और जल्दी ही सो जाते। सुबह की रोटी वह गुरुघर से खाकर डे-सैंटर जाने वाली बस पकड़ लेते। बेटा बाहर से ही खा पी लेता था। किसी को बनाने-पकाने का जरा भी फिक्र नहीं था। रसोई के चूल्हे लंबे अर्से से ठंडे पड़े हुए थे।

मैंने बड़े ध्यान से देखा कि उनकी रसोई में कितने वर्षों से वस्तुएं जस की तस ही पड़ी हुई थीं और किसी ने उनको हाथ तक नहीं लगाया था। यहां मिट्टी या गर्द तो नहीं थी जो उड़-उड़ कर आती पर फिर भी बर्तन व डिब्बों से एक गंध चिपकी हुई थी। एक दिन मैंने अंकल से कहा कि मैं आज उसे बेसन की रोटी बनाकर देता हूं तो यह सुनकर अंकल की आंखों में चमक आ गयी और चेहरा भी खिल गया था। जब अंकल ने रोटी वाला डिब्बा खोला तो देखा कि रोटी में फफूंद लग गई थी। यह रोटी बड़े दिनों से पड़ी हुई थी। अंकल का मन खराब हो गया और वह रोटी को डस्टबिन में फेंक कर जल्दी-जल्दी हाथ धोने लगे। उसने बताया कि महीना हो गया है...उनकी बेटी आई थी और कुछ रोटियां बना कर गई थी, वह कई दिनों तक एक रोटी निकाल कर खा लेते थे और यह रोटी बची थी जो खराब हो गई। उस दिन मुझे अपने एक विलायती मित्र की एक महफिल में कही बात याद आई कि इंडिया में उनका कुत्ता बासी रोटी नहीं खाता था तो उसकी मां ताजी रोटी पका कर देती थी और यहां विलायत में आकर उसको जब कई दिनों की बासी रोटी खानी पड़ी थी तो वह उस दिन बहुत रोया था, उसे अपना घर, ताज़ी रोटी मां व कुत्ता बहुत याद आये थे।

एक शाम बूढ़े अंकल की आंखों में आये आंसुओं ने मेरा मन भी पिघला

दिया। उस दिन अंकल ने स्कॉच के दो बड़े-बड़े पैग लगाये थे। उसकी कही बात ने मुझे परदेसियों के दुख के बारे में गंभीरता से सोचने को मजबूर कर दिया था। उसने कहा, 'मेरी वाईफ को मरे हुए पंद्रह साल हो गये...यहां से अकेला गया था उसकी अस्थियां लेकर और डेढ़ सप्ताह बाद वापिस आ गया था...आज तक नहीं गया...सच बात है, न दिल करता है जाने को...पीछे भी क्या रह गया...मेरा भाई कब का मर गया और बहन से दुश्मनों सरीखा रिश्ता बन गया है...ज़मीन पर भांजों का कब्ज़ा है...सच बात यह है कि हम परदेसियों ने गंवाया बहुत कुछ है और कमाया कम है...यह कैसी जिंदगी है अगर इंसान अपनी मां का मुंह आखिरी बार भी न देख सके और मां अपने अंदर ही हसरत लेकर मर जाये कि बेटा कब परदेस से वापिस आयेगा और यहां बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके...किसी की मां तो किसी का बाप तो किसी का भाई चल बसे और वह यहां पत्थरों के देश में आंसू बहाते रहे...आखिरी बार भी मिलने नहीं जा पाये...यही गम सारी उम्र दिल से खत्म नहीं होगा...अभी हमें वहां के लोग कहते हैं कि विलायती स्वर्ग में रहते हैं...उन्हें कोई तंगी परेशानी नहीं है...अगर जाते हैं तो हर कोई मतलब से ही मिलने आता है...कोई कहता है कि हमारे बेटे या बेटी को बुला लो विलायत...कोई पैसों की मांग करता है...अगर किसी को सच्ची बात कहें कि कुछ नहीं पड़ा विलायत में तो वह नाराज़ हो जाते हैं और कहते हैं कि तुम क्यों गये थे? तुम वापिस क्यों नहीं आये फिर? हमारी स्थिति बेटा धोबी के कुत्ते जैसी है...न इधर आ कर बस सकते हैं और वहां जो दिन काट रहे हैं वह तुम खुद ही देख आये हो...लोगों ने आकर सख्त मेहनत से अपना कारोबार भी लगा लिया...कंगाल वाले लाखों के हो गये पर मन के अंदर एक बेचैनी बस गई है...इंसान मशीन के साथ रहकर मशीन बनकर रह गया है...बेटा हमारे यहां एक गायक रहता है कंग...एएस कंग...बड़े साल पहले उसने एक गीत गाया था...वह गीत मुझे बहुत अच्छा लगता है...ले तुझे भी सुनाता हूं...और अंकल गाने लगेः

सारी उमर गंवा लई तैं
जिंदड़िये कुज न जहान विच्चों खट्टिया.........

# लंदन जो कभी नहीं सोता

लंदन आये मुझे कुछ ही दिन हुए थे कि गुरपाल सिंह का फोन आ गया। पांच साल पहले जब मैं लंदन आया था तो गुरपाल सिंह तब ही मिला था। बहुत ही गर्मजोश इंसान है। उसकी गहनों की दुकान थी पर अब नहीं है, वह कुछ और काम करता है अब। उसके फोन आने से कई दिन बाद भी मैं बर्मिंघम से साऊथहाल नहीं जा सका। गुरपाल सिंह समर्थ लेखक है और दो नावल,एक कहानी संग्रह व सफरनामा लिख चुके हैं। कम व धीमा बोलते हैं। जो लेखक उन्हें जानता है उसकी कोशिश यही होती है कि गुरपाल के पास जाए, क्योंकि मेहमान को घुमाने-फिराने में वह पूरा माहिर है। लंदन के बहुत सारे मशहूर व ऐतिहासिक स्थानों के बारे में उनके पास बहुत विस्तृत जानकारी है और इतने सालों में उसने लंदन का चप्पा-चप्पा छान मारा है। पंजाबी के बहुत सारे लेखक समय-समय पर उसके पास जाकर ठहरते रहे, पर फिर वह उनका असली रंग देखकर किसी ऐरे-गैरे लेखक को अपने घर में घुसाने से परहेज करने लगे।

साऊथहाल में मैं अवतार उप्पल के घर था। एक दोपहर गुरपाल सिंह वहां लेने आये। उसकी काली मर्सिडीज़ बेंज कार दौड़ती जा रही थी लंदन की काली सड़क पर...। गुरपाल सिंह हमेशा की तरह चुप ही थे, क्योंकि कार में रेडियो लगा हुआ था और पंजाब से समाचार आ रहे थे। समाचार खत्म हुए तो बड़ा प्यारा हिंदी गीत बजने लगाः

परदेसियों से न अंखियां मिलाना
परदेसियों को है इक दिन जाना...

घर में बैग रखकर हम बाहर को चले...लंदन शहर के दर्शन करने। भीड़ भरी हाईड पार्क रोड की पार्किंग पर कार पार्क की और फुटपाथ पर चलने लगे। मंद-मंद छींटे पड़ रहे थे। ठंडी हवा चल रही थी। थोड़ा आगे गये तो वहां फुटपाथ पर कुछ चित्रकार अपनी पेंटिंग्स की प्रदर्शनी लगाये बैठे थे, हम रुक गये और कलाकार की कलाकृति देखने लगे। गोरे चित्रकार ने

हमारी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया और अपनी जगह पर नीचे बैठा रहा। गुरपाल ने बताया कि यह गोरे कलाकार बड़े होशियार हैं...यह झट पहचान लेते हैं कि दर्शक हैं या ग्राहक? ग्राहक से बात करते हैं...दर्शक से बात करके वक्त जाया नहीं करते। आगे चलते गए...गुरपाल कहने लगे,आओ तुम्हें कुछ अहम स्थान दिखाऊं। चलते-चलते वह मुझे हर इमारत के बारे में पूरे विस्तार से बताता जा रहा था। एक बहुत ही आलीशान इमारत की ओर इशारा करते हुए उसने बताना शुरू किया, 'यह रूस की एंबेसी है।' उस पर रूसी झंडे झूल रहे थे। हम उस ऊंची इमारत के आगे से निकल गये। आगे एक महलनुमा इमारत आई,यहां भारत का दूतावास होता था। उसने बताया कि कभी कृष्णा मेनन, कुलदीप नैय्यर यहां इस पद पर रहते हुए रहे थे। उसी सड़क पर ही कई अन्य देशों के दूतावाास आये। थोड़ा आगे आए तो दाईं ओर देखकर गुरपाल कहने लगा, 'यह देख...कितना बड़ा घर...यह भारतीय व्यापारी लक्ष्मी मित्तल का घर है...जोकि इस समय यूरोप का सबसे बड़ा व्यापारी है। उसका बेटा आदित्य मित्तल है। वह जब अपने जहाज से सिंगापुर में अपनी व्यापारिक मीटिंग अटैंड करने जाता है तो दोपहर का खाना अगर बैंकाक में है तो चाय वियतनाम में और रात का भोजन मलेशिया में।' मैंने पूछा कि यदि अब कोई इनके घर की घंटी बजाये तो अंदर से कौन आयेगा? उसने कहा कि कोई सुरक्षा कर्मचारी होगा। हम मित्तल के बड़े व सुंदर घर को निहारते हुए आगे को गए। बाईं तरफ लोगों के दिलों की रानी प्रिंसेस डायना का महल आ गया। हम देखकर हैरान हुए कि सामने एक कैफे था, जो डायना के नाम पर था...वह अपने बच्चों के साथ यहां चाय-काफी पीने आती थी...इसी कारण ही कैफे के मालिक ने उसके नाम पर कैफे का नाम रख दिया था।

हमारे कार तक वापिस लौटने तक उस सड़क पर रौनक और भी बढ़ गई थी। हमारे जाते समय जो चित्रकार अपनी चित्रों की प्रदर्शनी लगा कर बैठे थे वह अब अपने चित्रों को समेट कर अपनी पीछे से खुली वैनों में रख रहे थे। बादल काले हुए और बूंदाबांदी होने लगी। जब हम आकर कार में बैठे तो एक गोरा-गोरी टहलते जा रहे, कार की ओर देखने लगे। मैंने महसूस किया कि देखते हुए वह सोच रहे होंगे कि इतनी शानदार व महंगी गाड़ी का मालिक है सफेद पगड़ी वाला यह सरदार? हम आगे कैनजिंगटन इलाके में आ पहुंचे।

शानदार इमारते देख-देख भूख कम होती थी और इंसानी हाथों की करामात पर बलिहारी जाने का मन करता था। क्वीन विक्टोरिया के समय यहां खेत ही खेत थे। क्वीन का पति एलबर्ट जर्मनी था जिसे बर्तानिया के लोग ज्यादा पसंद नहीं करते थे। एलबर्ट ने इस इलाके में सात सौ पचास एकड़ जमीन खरीदी और बहुत शानदार इमारतों का निर्माण करवाया जिनमें से रायल एलबर्ट हाल एक है। इसमें छह हजार सीटें हैं। यहां ही वर्ष 1971 में पंडित नेहरू की याद में कार्यक्रम हुआ था जिसमें लता मंगेशकर ने यहां गाया थाः

ऐ मेरे वतन के लोगो
जरा आंख में भर लो पानी

एलबर्ट हाल के सामने एलबर्ट की याद में उसका बुत खड़ा मुस्कुरा रहा था। एलबर्ट हाल के पीछे ही एंपीरियल कॉलेज (यूनिवर्सिटी) है। रायल कालेज ऑफ आर्ट्स, रॉयल कालेज ऑफ म्यूजिक, विक्टोरिया एंड एलबर्ट म्यूजियम, नैचुरल हिस्ट्री म्यूजियम व साईंस म्यूजियम की आलीशान इमारतें एलबर्ट ने ही बनवाईं। इसके बाद ही बर्तानिया के लोग उसे शाहजादा मानने लगे। क्वीन विक्टोरिया ने भी उसके नाम पर बहुत सारी चीज़ों व स्थानों के नाम रखे, जैसे एलबर्ट रोड, एलबर्ट पार्क वगैरा। यह सभी इमारतें देखते हुए हम कैनजिंगटन की एक ऐसी सड़क पर उतर गए, जहां लाल रंग के घर थे। गुरपाल ने कार रोकी और कहा, 'यह जिस घर के सामने हम खड़े हैं, देख क्या लिखा है?' मैंने पढ़ा तो पता चला कि वह घर अंग्रेजी के विश्व प्रसिद्ध कवि टी.एस. इलियट का है। वह यहां पर ही रहे और उनकी मौत भी यहीं हुई।

आधी रात होने वाली थी हमें सैंट्रल लंदन में घूमते। ज्यों-ज्यों रात बढ़ रही थी त्यों-त्यों लोगों का आना-जाना व रौनक और बढ़ रही थी। स्पष्ट था लंदन सारी रात जागता है। लंदन जो कभी नहीं सोता!

# विलायत में घूमते हुए

विलायत में बर्मिंघम के सोहो रोड को कौन नहीं जानता? मुझे तो यह सोहो रोड जालंधर के ज्योति चौक सरीखी लगी। भरा बाज़ार, खूब रौनकें, छोटी व बड़ी दुकानें, सड़क पर सजी हुई भिन्न-भिन्न सामानों की फड़ियां। यहां हर समय रौनक रहती है। रात को यह रौनक कुछ ज्यादा बढ़ जाती है व शनिवार-इतवार को इस से भी ज्यादा। हमारे पंजाबी बूढ़े हाथों में बेंतें पकड़े यहां टहलते फिरते हैं। सड़क के दोनों ओर लगे बैंचों पर बैठ एक-दूसरे से अपना दुख-सुख साझा करते हैं। आते जाते मेले को गौर से तकते हैं। विलायत के भिन्न-भिन्न रंगों से प्रसन्न हो जाते हैं। इसे पंजाबी बाबाओं की सोहो रोड कहने में कोई कठिनाई नहीं होती।

आज के कॉलम में सोहो रोड का इतिहास नहीं लिखा जा रहा कि इसका यह नाम क्यों पड़ा या यह कब बना था...वगैहरा...वगैहरा। यह सब कुछ बहुत सारे लेखकों ने अपने-अपने कॉलमों व सफरनामा पुस्तकों में बहुत विस्तार से लिखा हुआ है। सोहो रोड पर भारतीय लोगों की काफी दुकानें हैं। खाने-पीने, पहनने व अन्य सामान की। एक तरफ एक औरत बड़े-बड़े काले चमकते बैंगन व छोटे-छोटे टमाटर छाबड़ी में रखकर जमीन पर बैठी आने-जाने वाले लोगों में से ग्राहक ढूंढ रही है। परांदे...दुपट्टे...रूमाल व छतरियां रस्सी पर टांगे बैठा विलायती पंजाबी कभी-कभी आसमान की ओर ताकता है...पता नहीं कब बूंदा-बांदी शुरू हो जाए और सामान उतारना पड़े। जो मर्जी खरीदो सोहो रोड के बाज़ार से...!

नजदीक ही बड़ा गुरुद्वारा है। घर से आये बुजुर्ग दोपहर यहां काटते हैं। खुला लंगर पानी...चाय, दूध, मिठाइयां..जो मर्जी खाओ...अटूट भंडारा। जब दिल किया...मुफ्त की बस में चढ़ो और घर चले जाओ। 'बाबों' के मजे ही मजे हैं।

जितना समय मैं बर्मिंघम रहा...सोहो रोड पर खूब घूमा। वक्त बेशक बहुत नहीं होता था पर फिर भी जब भी समय मिलता मैं सोहो रोड पर जा

निकलता। मेरा ठिकाना भी तकरीबन सोहो रोड के ऊपर था। चलते-चलते मैं दूर निकल जाता। एक दिन सोचा कि क्यों न किताबों की दुकान देखी जाए। मैं अपने अहंकार को संतुष्टि देना चाहता था कि क्या पता यहां मेरी भी कोई किताब पड़ी दिख जाए। दोस्तों ने बताया कि यहां साहित्यिक किताबें भारी संख्या में रखी जाती हैं। पंजाबियों की उस पुरानी दुकान के अंदर जाकर मैंने देखा कि किताबों के लिए उन्होंने अब कुछ ही जगह बचा रखी थी...बाकी दुकान का ज्यादातर हिस्सा अन्य वस्तुओं से सजाया हुआ था। मुझे वहां अपनी एक ही पुरानी किताब दिखाई दी। मैंने शैल्फ से किताब निकाल कर देखी, भारत में इसका मूल्य सौ रुपये था और यहां आठ पौंड की पर्ची चस्पां कर दी थी। मैंने पंजाबी सरदार मालिक को किताबों की स्थिति के बारे में पूछा तो उन्होंने बात साफ की कि काका जी, भले समय में बहुत बेच ली यह किताबें...अब कोई नहीं पढ़ता किताबों को...हम नया काम शुरू कर रहे हैं...किताबें धीरे-धीरे कम कर रहे हैं...पुराने लोग अब किताबें पढ़नी छोड़ गये व इंडिया से नये आये ज्यादातर विद्यार्थी हैं...इनके पास पढ़ने की फुर्सत कहां...यह मज़दूरी करें या किताबें खरीदें? बुरे हाल हैं काका जी...अब यह देख लो हमारे पास पुरानी किताबें ही बची हैं...नयी किताबों का तो हमने आर्डर देना बंद कर दिया।

एक बात उन्होंने और बताई कि इंग्लैंड की सरकार लाइब्रेरियों को पंजाबी किताबें खरीदने के लिए जो ग्रांट देती थी वह भी अब बहुत कम या तकरीबन बंद ही कर दी है, क्योंकि सरकार किसी भी भाषा के पाठकों को आंकड़ों के मुताबिक ग्रांट देती है और पंजाबी पाठकों के आंकड़े दिन-प्रतिदिन घट रहे हैं। खैर, मैं अपनी किताब वापिस रखने लगा तो ख्याल आया कि मेरे पास अपनी किसी किताब की कोई भी कापी नहीं बची। आज मुझे जिस मेहमान के घर खाने पर जाना है, उसे क्या दूंगा? मैंने दुकानदार से पूछा कि इसका मूल्य आठ पौंड है, मैं कितने दूं। क्योंकि मैं इसका लेखक हूं। दुकानदार ने हैरानी से मेरी ओर ताका, फिर उतनी ही हैरानी से किताब की पिछली तरफ मेरी फोटो पर। मैंने सोचा कि शायद मुफ्त ही दे देगा! वह हंसकर बोला, 'जितने मर्जी दे दो...कब आये हो इंडिया से?' मैंने उसे पांच पौंड का नोट दिया, तो उसने एक पौंड मुझे वापिस करते हुए कहा, 'चलो लेखक को आधी कीमत पर ही दे देते हैं।' इंडिया के सौ रुपये मूल्य की मेरी ही किताब, मुझे

विलायत में (भारतीय रुपये) दो सौ अस्सी रुपये में मिली।

एक दिन दोपहर को सोहो रोड पर एक जाना-पहचाना बाबा दिख गया। मुझे झट याद आया कि यह बाबा एक दिन साऊथहाल से बर्मिंघम कोच में आते दिखा था। हुआ यह कि जैसे ही कोच साऊथहाल से बाहर निकली तो ड्राइवर के पीछे वाली एक सीट छोड़कर बैठे बाबे ने परौंठे निकाल कर खाने शुरू कर दिये। जैसे ही परौंठों व आम के आचार की खुशबू फैली तो गोरे लड़का-लड़की उठकर ड्राइवर के पास गये और बाबे को परौंठे खाने से रोकने को कहा। कोच चलाते पंजाबी ड्राइवर ने स्पीकर से बोल कर बाबे को परौंठे वाला डिब्बा बंद करने के लिए कहा तो बाबा अपनी सीट पर ही बैठा बोला, 'मैं तो खाऊंगा...लगा ले जितना जोर लगाना है...बुला ले पुलिस को...।'

एक काला उठकर ड्राइवर के पास गया। ड्राइवर ने फिर कहा। पर बाबा नहीं माना। सारा कोच बाबे के अड़ियल रवैये पर हैरान था। आज बाबा सोहो रोड पर घूमता मिल गया। मैंने बुला लिया, 'बाबा, कैसे हो...कोच में खाये थे उस दिन परौंठे...? बहुत शोर मचा था तेरे परौंठों की खुशबू पर...?'

मेरे एकदम इस तरह पूछने पर बाबा हैरान सा हुआ और थोड़ा मुस्कुराया भी। कहने लगा, 'काका, यह साली विलायत बड़ी चंदरी हैं...मैं कौन सा किसी से छीन कर खा रहा था...अपनी बहू के बनाये खा रहा था...मैंने क्या उसका सिर फाड़ दिया? काका अपने देश में मजे ही मजे हैं...ऐसी पाबंदियां तो नहीं हैं अपने देश में...।'

जालंधर के समीप एक गांव से आया यह बाबा मेरे साथ कितनी देर बात करता रहा। उसने बताया, 'काका मैं अपने गांव का नंबरदार था...पूरा दबदबा था सरकार व दरबार में...यहां भी मेरे सभी दोस्त मुझे नंबरदार कह कर बुलाते हैं...यहां तो नंबरदारी गई काका...पटवारी मेरे पास आता था...थानेदार के बराबर कुर्सी बिछती थी...तहसीलदार पूछ-पूछकर काम करते...सारा गांव सलाम करता था...और यहां? पड़ोसी ही पड़ोसी को नहीं पहचानता काका...।'

सोहो रोड पर पंजाबी युवक जो बतौर स्टूडैंट आये और अब ज्यादातर गैरकानूनी रह रहे हैं...बेचारे मजबूर हैं...मैं देखता था कि वह अपने कानों में मोबाइल फोन लगाए अपने देश मां-बाप या भाई-बहनों से जोर-जोर से बात कर रहे हैं। यहां छोटी-छोटी दुकानों में अच्छे फोन कार्ड मिलने के कारण लड़के बेसब्री से जल्दी से कार्ड खरीदते और झट-पट दुकान से बाहर होकर,

नाखून से कार्ड खुरचकर...समय के अभाव में, सड़क पर चलते-चलते ही इंडिया फोन मिलाते हैं। घर तक चलते-चलते बात करते जाते हैं।

इसी सोहो रोड पर ऑडियो-वीडियो स्टोरों में से पंजाबी गीतों के बोल भी कान में पड़ जाते हैं। इसी रोड पर नशेड़ी लोग भी आते-जाते लोगों को रोक कर एक-एक पौंड की मांग करते मिल जाते हैं। शाम को कई लड़के काम से वापिस आकर...गलासी या बियर का डिब्बा लेकर टहलते निकलते मस्ती मारते...दिल बहलाने का साधन ढूंढते हैं। भीड़ होने के कारण अगर कोई चलता-फिरता आगे आ जाये तो बड़ा हार्न मारकर अगला उसे गालियां भी निकाल देता और अगर कोई किसी का परिचित बिना उसे देखे सड़क पर जाता दिख गया तो छोटा हार्न मारकर उसे फतेह बुलाते भी दिखे। इसी रोड पर ही शहीद उधम सिंह वैलफेयर कम्युनिटी सैंटर है, जहां पंजाबी भाईचारे के लोगों की ज्यादातर समस्याएं हल की जाती हैं। ऐसी ही एक अन्य संस्था सिख कम्युनिटी सैंटर है। इसके दो दरवाजे छोड़कर है, उसका डायरैक्टर दल सिंह ढेंसी है। गोल पगड़ी वाला, पतला लंबा सरदार। सब की आवभगत करता है।

एक शाम मैं घर से निकला...चलते-चलते ऐसा गुम हुआ कि डेढ़ घंटा पैदल लंबा रास्ता तय कर दूर तक जा पहुंचा था। मेरे पास बस पास भी नहीं था। अपना मोबाइल फोन मैं घर ही छोड़ आया था। जब वापिस जाने की सोची तो बारिश शुरू हो गई। नजदीक ही एक पब में चला गया तो आगे त्रिलोका अंकल बैठा बियर की घूंट भर रहा था...टीवी पर मैच देख रहा था। देखकर खुश हो गया, 'तू किधर से...क्या हाल है?' त्रिलोका अंकल महीना भर पहले दो बार दोस्तों के घर पार्टियों में मिला था और कई सालों से विलायत में छपने वाले मेरे आर्टिकल का पाठक था। कहने लगा, 'तू बेफिक्र होकर बैठ मेरे साथ...बातें करते हैं...तुझे मैं घर छोड़ आऊंगा।' हमने विलायत की संस्कृति व खासकर पंजाबी लोगों के जीवन के बारे में काफी बातें की, जो अगले कॉलमों में साझी करूंगा। बर्मिंघम की सोहो रोड के बारे में वहां के एक टीवी पर सुना एक गीत अभी भी मुझे याद हैः

सोहो रोड उत्ते मुंडा कड्डे गेड़ियां
कन्नां विच मुंदरा पाके...

लंदन में सवेरे उठकर बुजुर्ग यदि अपनी पत्नी का हाल न पूछे...वह खीझ जाती है और सारा दिन बड़ी मुश्किल से व्यतीत होता है। मुझे यह व्यवहार अच्छा लगा। मैं एक बूढ़े जोड़े के पास कई दिन रहा। अजीब जीवन था बुजुर्ग जोड़े का। पल में नाराजगी पल में हंसी। बुजुर्ग बापू बताने लगे कि अगर सुबह उठकर तेरी बेबे के बिस्तर पर न जाऊं...न पूछूं कि कैसी हो...तेरी तबीयत...ठीक है डार्लिंग...? तो वो सारा दिन नाखुश रहती है...सारा दिन बुड़-बुड़ करते ही निकलता है। बहुत से बुजुर्गों को तो गुरु घरों ने संभाला हुआ है। उनके पास बस के पास भी मुफ्त हैं। घर के आगे से बस पकड़ो और गुरु घर आकर उतर जाओ...सेवा करो...बातें करो...मन मर्जी का खाओ और खिलाओ...लाइब्रेरी में बैठकर पढ़ो और जब दिल करे तो बस पर चढ़ो और घर के सामने उतर जाओ। गुरु घर जाने की बजाय बहुत सारे बुजुर्ग डे-सैंटर में चले जाते हैं। यहां डे-सैंटरों में बहुत ही अच्छी रौनक होती है। डे-सैंटरों को कम्युनिटी सैंटर भी कहते हैं। मैं बहुत से कम्युनिटी सैंटरों में गया और बुजुर्गों की रौनकें देखी। बुजुर्ग आपस में झगड़ते देखे। ईर्ष्या व चुगलियां करते देखे। प्यार व हमदर्दी जताते नजर आये। कुछ बहुत खामोश देखे अपने आप में मस्त...! सप्ताह के अंत में पांच-पांच पौंड मिला कर रोस्ट चिकन, भुजिया मंगाते व फेमस ग्राऊस (तित्तर मार्का) व्हिस्की के पैग टकराते, पंजाब की चर्चा करते व अपने बच्चों को कोसते दिखे।

----------

इस समय पंजाबियों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। धन्य हैं हमारे पंजाबी जो सख्त संघर्ष करके बड़े हौसले व हिम्मत के मालिक हैं। इस समय सबसे बड़ी समस्या बच्चों की है। बच्चों के विवाह बुरी तरह से टूट रहे हैं। बताया जा रहा है कि लड़कियां विवाह ही नहीं करवा रहीं। वह इंसानी जीवन जीना चाहती हैं न कि पशुओं वाला जीवन! वे यह नहीं चाहती कि आज विवाह करवाओ और कल को उनको घर से निकाल दो। मेरे अंकल की एक बेटी जिसकी उम्र लगभग 39 वर्ष हो चुकी है, अंकल ने मुझे कहा कि तुम उससे विलायत के जन-जीवन के बारे में पूछो और यह भी पूछो कि वह शादी क्यों नहीं करवा रही? मैंने पूछा तो वह कहने लगी, 'क्या रखा है शादी में? औरत हर जगह संघर्षशील जीवन जीती है...फिर चाहे वो विलायत है....चाहे दुनिया का कोई दूसरा कोना,औरत पहले पढ़ती है...फिर काम करती है...शादी के बंधन में

बंधती है...बच्चे पैदा करती है...काम के साथ पूरे घर की देखभाल...बच्चों व परिवार की देखभाल और बहुत से काम। अगर बच्चा ठीक नहीं निकला तो सारा दोष औरत पर आएगा...आदमी खुद पर दोष नहीं लेता कि बच्चा बिगड़ने में उसका भी कुछ योगदान है।' उस लड़की ने कहा कि इंडिया में खेल बना हुआ है कि विलायत जाओ, चाहे जहाज के पंखों के नीचे छुप जाओ या किसी लड़की के साथ शादी कर...कितने ही लड़कों ने अब तक कितनी लड़कियां यहां छोड़ी हैं?

लड़की की यह बात सुनकर मैंने कहा कि लड़कियों ने भी तो बहुत लड़के छोड़ रखे हैं? तो वह एक पल के लिए चुप हो गयी फिर कहने लगी, 'आप लड़के हो तो उसी के हक में बात कर रहे हो...यह तो मुझे पता ही था...पर हां, मैं मानती हूं यह बात...पर कुसूर किसका है? सारा कुसूर हमारे मां-बाप का है...हमारे मां-बाप चाहे इधर हैं चाहे वहां...लालची हैं...बच्चों का मोल लेते हैं...एक जीव के सहारे पूरा परिवार विलायत लाना चाहते हैं...तभी तो ठगे गये हैं लोग...पंजाब के स्वाभिमानी लोग बेशक इधर या उधर हैं परंतु सच्ची बात यह है कि अपने बच्चों का मोल ले रहे हैं विदेश आने के लिए।' लड़की ने बड़ी बेबाकी से कहा, ''वीर जी मैं शादी नहीं करवाना चाहती। मैंने अकेले भी नहीं रहना। इससे अच्छा तो यह है कि मैं एक बिल्ली पाल लूं। बिल्ली मेरी दोस्त, भाई, बहन होगी, मेरा ख्याल रखेगी। बिल्ली से मुझे अकेलापन महसूस नहीं होगा। वीर जी हर मनुष्य स्वार्थी है। पर बिल्ली व कुत्ता सब से अधिक वफादार होते हैं। वह स्वार्थी नहीं होते। हमारे समाज में जितने भी विकार आये हैं वह इंसान के स्वार्थी होने के कारण ही आये हैं। पहली बात तो यह कि चाहे लड़का हो या लड़की, इधर की पैदायश को जब उधर के पैदा हुए से ब्याहते हैं तो बहुत बड़ी मूर्खता होती है। ऐसे भाग्यशाली कम हैं जिनके घर बस रहे हैं नहीं तो वहां से आया हुआ चाहे लड़का है या लड़की कितने-कितने साल आपस में घुलमिल नहीं पाते। वहां से आए हुए लोगों को झूठ बोलने की आदत होती है जबकि यहां वाले गोरों की सोहबत में रहकर झूठ नहीं बोलते। सच कहते हैं और छोटी-छोटी बात पर नाराज हो जाते हैं। छोटी-छोटी बात झगड़े का कारण बन जाती है। अब तो विश्वास नाम की चीज ही नहीं रह गई। अब न तो यहां के लड़के और न ही लड़कियां वहां वालों से शादी करवाना चाहते हैं। इससे तो बेहतर है कि शादी ही न

करवाई जाए। मैं यह नहीं कहती कि यहां के सभी लड़के व लड़कियां दूध के धुले हैं।

उस लड़की ने यह भी कहा कि यहां बहुएं नहीं चाहती कि बेटा अपने माता-पिता के साथ रहे। शादी के बाद जल्दी अलग होना यहां की जिंदगी है। कई लड़के तो माता-पिता व छोटे भाई-बहनों से इतने जुड़े होते हैं कि वह परिवार से जुदा नहीं होना चाहते। बल्कि यहां विलायत में तो मां यह कह देती है कि कोई बात नहीं बेटा क्या फर्क पड़ता है, अपने घर तो जाना ही होता है। लड़के रोते हैं अपने मां-बाप से बिछुड़ते हुए...आखिर अपना नया संसार व नया घर बसाने के लिए पत्नी के पीछे जाना ही पड़ता है सब को। विलायत के जमे-पले इस लड़की के जन-जीवन के बारे में कितने तीखे व स्पष्ट विचार थे। इस बारे में सोचता मैं मन ही मन बातें करता रहा।

----------

देखा है कि विलायत के हर घर में टेबल पर फल पड़े हुए हैं, कोई खाये या न खाये। जब पड़े-पड़े यह फल गल-सड़ जाते हैं सप्ताह के अंत में लोग नये फल रख देते हैं। कुछ घरों में मैंने देखा है कि फल लाकर रख छोड़ना जैसे यहां का रिवाज या शौक लगता है। मुझे याद आया कि छोटे-छोटे होते थे तो जब कभी कई-कई दिनों बाद महीने दो महीने बाद बेबे या बापू ने कभी शहर जाना होता तो थैले में केले या सेब देखकर चाव चढ़ जाया करता था। मैंने सोचा कि क्या कोई बच्चा विलायत में भी हमारी तरह फल देखकर खुश होता होगा? नहीं........बिलकुल नहीं।

यहां वक्त की बहुत कमी है, कौन धनिया, हरी मिर्चें, अदरक, लहसुन आदि को 'कूंडे' में रगड़े? इन सब को मिक्सी में पीसकर फ्रिज में रख दिया जाता है। जरूरत मुताबिक चम्मच भरो और सब्जी में फेंको। एक शाम तोते अंकल ने साग में तड़का लगाते बताया कि तेरी आंटी को इंडिया गये पांच महीने होने वाले हैं। जाते वक्त इकट्ठा साग बनाकर फ्रिज में भर गई थी...देख ले...वैसे का वैसे ही पड़ा है सारा साग। थोड़ा भी खराब नहीं हुआ। जब दिल करता है तड़का लगाते हैं...जब वापिस आयेगी तब तक खत्म कर देंगे। यह बताते हुए अंकल साग को तड़का लगाने लग गये।

# अजीब ज़िंदगी है विलायतियों की !

मेरे कॉलम जोकि विलायत की अखबारों में छपते हैं को तारी अंकल कई वर्षों से पढ़ रहे थे। वह तभी से मुझे इंडिया फोन करके कहते रहते कि, 'मैं तुम्हें स्पांसरशिप भेजता हूं, तुम आ जाओ और आकर विलायत देख लो, और मुझे मिल जाओ, मैं तुम्हारे लेखों का दीवाना हूं।'

वह पचास वर्षों से वहां रह रहे हैं। पच्चीस साल की उम्र में समुद्री जहाज से विलायत गये थे। सारी उम्र फैक्ट्ररियों में धक्के खाते ही निकल गई। जब वहां गये थे तो जाते ही पगड़ी उतार फेंकी थी, सिर के बाल कटवा दिये थे और दाड़ी भी सफा-चट करवा ली थी। फिर बीस सालों के बाद जब अपने पंजाब, अपनी विरासत और धर्म का मोह सताने लगा तो फिर केश, दाड़ी रख लिये। अंकल काम पर भी जाता तो अपने साथ-साथ अपने पास के गुरुघर में सेवा करने भी जाता। यूं ही उसे गुरु घर की सियासत से भी मोह हो गया और वह गुरु घर के प्रबंधकों के एक पुराने गुट में हिस्सा लेने लगा। काम से रिटायर होने के बाद वह कई साल गुरु घर की कमेटी में अलग-अलग पदों पर सरगर्म रहा और आखिर नतीजा यह निकला कि एक दिन उसे गुरु घर से जलील होकर आना पड़ा और वापिस उसने गुरु घर की ओर मुंह नहीं किया। कमेटी ने उस पर गंदे-गंदे आरोप लगा दिये। अंकल के बहुत फ़िराख-दिली से बताने के मुताबिक कमेटी का सबसे बड़ा आरोप उसपर यह था कि तारी भाईया, महिलाओं से बात करने का बड़ा 'ठरकी' है और लंगर में सेवा कर रही महिलाओं से घंटा-घंटा भर बातें करता रहता है और जो महिला उससे ज्यादा बातें करती है, उससे यह उसका फोन नंबर मांग लेता है।

शनि-रविवार का पूरा दिन तो अंकल गुरु घर में ही बिताता था। अंकल के मुताबिक संगतें उनका बहुत आदर करने लगी थी और दूसरे इस बात से भी उनसे जलते थे। तारी अंकल गुरु घर बस से आते-जाते थे। काम से रिटायर होने के बाद और आंटी के गुजर जाने के बाद तो अंकल के लिए गुरु घर ही

सबकुछ था। गुरु घर की लाइब्रेरी में वह रोजाना अखबार, मैग्जीन और किताबें पढ़ते थे। पंजाबी अखबारों के मालिक मुफ्त में ही बड़े-बड़े बंडल गुरु घरों में रखते और एक-एक करके संगत अखबार उठाती जाती। अंकल दिन में पढ़ी हुई खबरों और रिपोर्टों का निचोड़ निकालकर बुजुर्ग मित्रों व साथियों को बताते। पूरा दिन वह किसी एक खबर के पीछे ऐसे पड़ते कि सबकी बस करवा कर ही हटते, 'यह देखो बई,पंजाब डूब चला, नशे-नशे-नशे...और रह भी क्या गया पंजाब में...ओए लोगो, कुछ तो बोलो तुम?' अंकल के मुताबिक वह चोर आंख से सबकुछ देख लेते थे और ज्यादातर तो उसपर हंसते थे और पीछे से बोलते थे कि यह ज्यादा ही सिर खाता रहता है, उन्होंने क्या लेना है उसके इन व्याख्यान से? वह सभी तो अकेलापन भगाने, हंसी करने और सही रूप में समय पास करने और लंगर-परशाद छकने-छकाने ही गुरु घर आते थे।

मैंने अंकल की बात को उलटाते हुए कहा, 'नहीं अंकल, लोग तो नाम जपने के लिए आते हैं।' यह सुनकर वह नाराज हो गये थे, 'तुम्हें क्या पता है? चुगलियां...ईर्ष्या और जलने के लिए आते हैं, पेट भरने आते हैं, और बूढ़े-बुढ़िया कहां जायें?' लड़ भी पड़ते हैं, चुप्पी ही अच्छी है। यदि गुरुओं का दिया संदेश मान लेते तो यह दुख ना भोगते हम।'

विलायत के जीवन अनुसार लड़की या लड़का तो बहुत वर्षों से उनके पास नहीं थे। अपने-अपने घरों में थे। कभी-कभी मिलते थे और छोटा बेटा अंकल के पास सिर्फ नाम भर को ही रहता था। पास भी क्या था? बिलकुल गोरों जैसा जीवन था उसका। खेला-पला गोरों में जो था। फोनों से संबंधित किसी बड़ी कंपनी में हैल्पर की जॉब करता था। ज्यादा पढ़-लिख नहीं सका था। खाने-पीने का पूरा शौकीन था और अपने अंग्रेज दोस्त लड़के-लड़कियों के साथ घूमता-फिरता रहता। हफ्ते के जितने कमाता सब उड़ा देता। सप्ताह के अंत में घर आता था, जब वह दो दिनों के लिए घर आता था तो वही दो दिनों के लिए अंकल गुरुघर होता था और दो दिन अंकल वहीं सो जाता था। बेटा-बाप एक दूसरे से जरा भी बात शेयर नहीं करते थे। लड़का और उसकी गर्लफ्रेंड दो दिन वहां रहते और जिस सुबह अंकल ने गुरु घर से वापिस लौटना होता था, वह उनसे बिना मिले, घर से निकल जाता। यदि कोई जरूरी संदेश होता भी तो बेटा नोट बुक में लिखकर किचन वाली मेज पर रख

जाता और अंकल आकर पढ़ लेते। फोन भी वह एक-दूसरे को कभी-कभार ही करते थे।

एक दिन तारी अंकल ने बेटे के जन्मदिन की मुबारकबाद देने के लिए उसे फोन किया था। मैं भी तब उनके पास बैठा था। बेटे-बाप में मात्र 20 सैकेंड बात हुई थी और बहुत ही औपचारिक सी बात थी और फोन बंद हो गया। मैं हैरान हो कर सोचने लगा था कि बस? बीस सैकेंड में बधाई ली-दी गई?

मैं विलायत की इस अनोखी जीवन शैली को देखकर बहुत हैरान होता और वहां बैठा इंडिया और अपने पंजाब के बारे में सोचने लगता। विलायत की इस जीवन शैली में जहां एक-दूसरे के जीवन में किसी की दखलंदाजी नहीं थी, चुप्पी और दूरी थी। इसके बावजूद हरेक के अंदर एक ज्वालामुखी खौलता लगता था। रिश्ते तार-तार थे। गहरी खामोशी और फीकी मुस्कुराहट पल में ही सब-कुछ बयान करती रहती थी। अपने खून के रिश्ते कहां थे? अपने पैदा किये बच्चे कहां थे? अपने खून के रिश्ते कहां थे? अपनापन कहां था? सद्भावना और सहयोग कहां था? हमदर्दी कहां थी? मां अपने बच्चों को देने वाली लोरी और आशीर्वाद विलायत का जहाज चढ़ते समय जल्दबाजी में इंडिया ही छोड़ आई थी। बेटा भूल गया था कि मेरी मां के पैर केवल चलने के लिए ही नहीं हैं, यह किसी बेटे के हाथों की छुअन मांगते हैं। कोई किसी को पूछता नहीं कहां से आये हो, और ना ही कोई बताता कि कहां जा रहा है, किसके साथ आऊंगा, कब आऊंगा!

# चैलटनम में चार दिन

कैनेडा में मुझे सबसे खूबसूरत ब्रिट्रिश कोलंबिया लगा था और विलायत में चैलटनम टाऊन। यह बर्मिंघम से लगभग पैंतालिस मील की दूरी पर साऊथ में एक कौट्सवोलड नाम की लंबी व ऊंची पहाड़ी की गोद में बसा हुआ था। इसकी अबादी तकरीबन एक लाख है। यहां पंजाबी लोगों की गिनती नाममात्र ही है। यहां गुरु घर भी कोई नहीं। गुजरातियों का एक छोटा सा मंदिर है। चैलटनम टाऊन का नाम दो नदियों के नामों पर पड़ा, एक नदी का नाम 'चैलट' व दूसरी का नाम 'हैम' है—इस तरह यह चैलटहैम से चैलटनम बन गया। मैं यहां चार दिन रहा। इसकी पीठ पर बैठी खामोश व हरी-भरी पहाड़ी, यहां की खुली सड़कें, पुराने व बड़े-बड़े घर...आस-पास के लंबे पेड़ व हरियाली देखकर मन बहुत खुश हुआ। यहां बहुत साल पहले झरने फूटते थे। पर उन झरनों का पानी बेस्वादा था। लोग पानी पी-पी कर इसका स्वाद चखते और इसमें नहाते भी थे। किसी समय किसी फौज का जरनैल यहां अपनी फौज के साथ आया। वह सभी यहां नहाये। उनको लगा कि इस प्राकृतिक पानी से सेहत अच्छी होती है। इसी बात को लेकर यहां लोग दूर-दूर से छुट्टियां मनाने आने लगे। इसकी मशहूरी होने लगी। अब यहां एक ही प्राकृतिक झरना बाकी है। चैलटनम मुझे बिलकुल वैनकूवर का सगा भाई लगा। यहां से मुझे आंटी बलजीत कौर थिंद के ईमेल व फोन आते थे। वह मेरे दस बारह साल से पक्के पाठक थे। उनका परदेस में रहने के बावजूद अपने देश के सभ्याचार व साहित्य से मोह जरा भी कम नहीं हुआ। वह अपने पति निर्मल सिंह थिंद के साथ लगभग चालीस वर्ष पहले विलायत आये थे। कुछ समय लंदन के ईस्ट-वैस्ट में रहने के बाद उन्होंने चैलटनम टाऊन को पसंद किया। यहां वह 24 वर्षों से रह रहे हैं। उनके बड़े बेटे मनप्रीत से बात करते एक पल यूं महसूस किया जैसे वह अभी संगरूर के किसी गांव से आई बस से उतरा हो। बड़ी ठेठ व फर्राटेदार संगरूरी पंजाबी बोलता है। मैं हैरान था कि विलायत की पैदाइश व पालन-पोषण वाला लड़का और इतनी शुद्ध पंजाबी? यहां के

पैदाइश व पालन-पोषण वाले लड़के-लड़कियां पंजाबी बोलते तो हैं पर पूरी तरह ठीक बोलना उनके बस में नहीं है। वह प्रयत्न जरूर करते हैं ठीक बोलने की। 'र' को 'ड़' व 'ड़' को 'र' बोलते हैं। पर मनप्रीत ऐसा नहीं बोल रहा था। उसका उच्चारण ठीक था। यदि कोई मुझे कहे कि विलायत के पले-बढ़े सबसे अधिक शुद्ध पंजाबी बोलने वाले नौजवान को ईनाम देना हो तो मैं मनप्रीत का नाम लूंगा। मनप्रीत ने बताया कि पंजाबी ठीक बोलने का कारण उसके घर में माता-पिता द्वारा पंजाबी में बातचीत किया जाना था। जो माता-पिता जानबूझ कर घर में अपने बच्चों से पंजाबी की जगह अंग्रेजी में बातचीत करते हैं,उनके बच्चे पंजाबी टूटी-फूटी बोलते हैं।

मनप्रीत पुलिस में कांस्टेबल है। एक दिन मैं उसके साथ कार में गलोस्टर शहर में जा रहा था। मैंने पूछा कि मनप्रीत तुम तेज रफ्तार गाड़ी चलाने वालों को भी पकड़ता होगा। तो उसने बड़ी बेबाकी से कहा, 'नहीं...क्योंकि यह गलती मैं खुद भी करता हूं...एक बार मुझे भी पुलिस ने पकड़ा था और जुर्माना भी किया था...जो गलती मैं खुद करूं तो उसके लिए लोगों को सज़ा क्यों दूं?' मैं हैरान व खुश था उसकी साफगोई व स्पष्टता से दिये जवाब पर। काश! हमारे भारतीय बच्चे भी इन विलायती बच्चों की तरह जुर्रत से सच कहना शुरू कर दें।

मैंने अपनी चार महीने की विलायत यात्रा के ज्यादातर दिन बर्मिंघम या लंदन के भीड़ भरे शहरों में ही बिताये। साऊथहाल, इलफोर्ड, लैस्टर, डर्बी, कवैंट्री वुलवरहैंपटन आदि शहरों में मैं बहुत दिन रहा और भीड़ में घिरा रहा। पर चैलटनम में सड़कों की आवाजाही व शोर बिलकुल नहीं था।

एक शाम हम एक पब में गए। मनप्रीत ने रास्ते में जाते हुए मुझे बताया कि वहां उसका एक गोरा दोस्त उसका इंतजार कर रहा है। उसका नाम ग्राहम है। वह हर हफ्ते वहां मिलता है। वे पब में होने वाली प्रतियोगिता में हिस्सा लेते हैं। जब हम पब के अंदर दाखिल हुए तो खूब गहमा-गहमी थी। स्पीकर में से सवाल गूंज रहे थे। ग्राहम मस्त था अपने लिखने-पढ़ने में। गोरे-गोरियां कुछ-न-कुछ पीते व अपने-अपने साथियों के साथ सवालों के जवाब साझा करते व

फार्म भरते। बीच-बीच में मिली-जुली हंसी की आवाज आती। बीच-बीच में ताली भी बजती। सवाल-जवाब आज व भविष्य के मसलों पर आधारित थे। जो जीतता उसे एक बीस पौंड का वाऊचर मिलता। हफ्ते में एक बार, जब भी वह चाहे यहां आकर मनमर्जी का खाये और पीये। इसी कारण यहां भीड़ ज्यादा जुटी हुई थी। इस पब का नाम हर्दली था।

# विलियम शेक्सपियर के घर

अगर मैं विलायत को पुरातनता व नवीनता का मेल कहूं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यहां शानदार व आलीशान नयी इमारतें मन को मोह लेती हैं, वहीं हजारों व सैंकड़ों साल पुराने...भूरी ईंटों वाले...धूमिल तख्तियों व पुराने दरवाजे वाले घर भी हमें पुकारते हैं। मैं अंकल निर्मल थिंद के साथ स्ट्रेट फोर्ड शहर गया। हम घूम-फिर रहे थे। तीन सौ साल पुराना एक घर। लकड़ी के बड़े तख्तों वाला दरवाजा। बड़ी पुरानी इमारत। छोटे-छोटे से कमरे। बाहर लिखा हुआ था–17वीं शताब्दी में यहां का मेयर इस घर में रहा था। इसका निर्माण 1196 में हुआ लिखा था। साथ ही यह लिखा हुआ था कि लोगों का कहना है कि इस घर में सबसे अधिक भूत लोगों को दिखे। चलते-चलते जब हम दुनिया के महान नाटककार विलियम शेक्सपियर के घर के नजदीक आये तो लोगों की काफी भीड़ थी। लोग उनके पैदा होने का कमरा, घर व उनका निजी सामान देखने के लिए पंक्तियों में खड़े टिकटें ले रहे थे। सन 1564 में जन्मे व 1616 तक जीने वाले शेक्सपियर का कितने वर्ष पुराना घर गोरों ने ज्यों का त्यों संभाल के रखा हुआ है। उनकी नयी याद वर्ष 1964 में लोगों ने पैसे इकट्ठे करके बनवाई। लोग अपने-अपने कैमरों से उस घर के सामने खड़े होकर तस्वीरें खिंचवा रहे थे। पुरानी ईंटों को यूं सहेज कर रखा गया था कि कहीं वह क्षरित न हो जाएं, बल्लियों और शहतीरों में दरार न पड़ जाये, कोई दीमक न खा जाये किसी तख्ते को। यह देख मैं हैरान हुआ कि हमारे भारतीय लोगों को आखिर कब समझ आयेगी। हमने अपना कुछ भी नहीं संभाला। मैं विलायत में हुए अपने सार्वजनिक समारोहों में यह बात निसंकोच कहता रहा हूं कि यह गोरे लोग ही हैं जो कोहेनूर हीरा संभाल कर बैठे हैं...यदि कहीं यह हमारे पास होता तो यह कब का खराब हो गया होता। हमारे भारतीयों ने अपने विरसे के महान कलाकारों की कोई यादगार नहीं संभाली। हम लोग यहां आकर देखकर भी जाते हैं पर प्रेरणा का सबक कभी पल्ले नहीं बांधते। इस बात का दुख हमें मारता है।

# आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय

मनप्रीत और मैं आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय देखने जाते हैं। चैलटनम से आक्सफोर्ड जाने के लिए मनजीत ने घुमावदार रास्ता इसलिए चुना क्योंकि वह रास्ते में आने वाले कुछ पारंपरिक गांव भी दिखाता जायेगा। छोटे कमरों व छोटे दरवाजों वाले कुछ गांव आये जो पहाड़ियों पर बसे हुए हैं। पुराने व सुंदर घर। तंग सड़कें,आस-पास खुली जगह। समतल हरियाली से भरे मैदान। एक गांव से निकलते हुए उसने बताया कि इस गांव में विलायत के काफी मशहूर लोग रहते हैं,यहां के कई कलाकार बहुत मशहूर हैं। मनप्रीत की दो सीटों वाली कार किसी उड़न खटोले की तरह आक्सफोर्ड में घुसी। मैं बहुत खुश व हैरान हुआ। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की ऊंची बहुत पुरानी व नई सुंदर इमारतें देख कर।

1096 में बने इस विश्वविद्यालय को दुनिया भर से देखने लोग आते हैं। संक्षेप में यह भी बताता जाऊं कि यहां कौन-कौन पढ़े हैं। टोनी ब्लेयर समेत इंग्लैंड के 45 प्रधानमंत्री यहां पढ़े। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह, पंडित जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी, अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन, राजीव गांधी, पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री लियाकत अली खां, बेनज़ीर भुट्टो व उनके पिता जुल्फीकार अली भुट्टो, क्रिकेटर इमरान खान, अमेरिका में भारतवंशी कैलीफोर्निया के गवर्नर बॉबी जिंदल व विश्व की कई अन्य बड़ी हस्तियां यहां पढ़ी हैं जिनका यहां जिक्र करना संभव नहीं है। इतनी सदियों पुरानी इमारतें जस की तस खड़ी हैं, यकीन नहीं होता। मैंने देखा कि एक छत के नीचे ओट लगा कर उसे सहारा दिया हुआ है। एक बहुत से संकरे छेद के रास्ते विश्वविद्यालय में खड़े उस टावर पर चढ़े, सिर्फ एक ही व्यक्ति जा सकता है या उतर सकता है, इतना संकरा रास्ता है। हम रस्सी को पकड़ कर लकड़ी के दो पैरों जितनी सीढ़ियां पर पैर धरते आगे पीछे चढ़ गये। शुक्र

है कि आगे कोई उतरने वाला नहीं आ गया। मैंने शिखर पर जाते पानी की बोतल खाली कर दी। वहां से सारी यूनिवर्सिटी के चारों तरफ के दीदार अच्छी तरह हो जाते हैं। इंसानी हाथ की करामात व मनुष्य के मन के आविष्कार की कोई थाह नहीं। मैं आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी देख-देख यही महसूस कर रहा था।

----------

# एक साज़ की मौत

रजाई से निकलकर मैं बाजार की ओर चल पड़ा। धूप का कहीं पर नामो-निशान नहीं था। आसमान में काले-सफेद बादलों की गठरियां सी उड़ रहीं थीं। साऊथहाल की अनजान गलियों व अनजान चेहरे! भीड़-भाड़ वाले एक अंग्रेजी स्टोर पर मध्यम सा संगीत गूंज रहा था। दाईं ओर, फुटपाथ पर कबूतर दाना चुन रहे थे। मेरा मन हल्के फूल की मानिंद था। देखो तो सही, क्या फर्क है इंडिया व इंग्लैंड के कबूतरों में? कौन दाना डालता होगा इनको? मेरे होंठों से खुद-ब-खुद बोल निकल उठेः 'हुण छत्तरी दा की करिये, जद उड़गे कबूतर चीने, यार नगीने...'

फुटपाथ पर ही चटाई बिछा, बांहों को बगलों में दबाकर एक गोरा बैठा हुआ था। चटाई पर ही उसने तीन साज़ रखे हुए थे, छोटे-छोटे थे तीनों साज़। इंडिया में तो मैंने साज़ों की दुकानों पर इन जैसे कई बड़े-बड़े सुर मंडल देखे हुए थे। मैं इन छोटे-छोटे साज़ों में छोटे सुर मंडल को देखने लगा, गोरा मुस्कुराया और बोला,

'क्या हाल है प्यारे?'

'मैं बिलकुल ठीक...तुम सुनाओ?'

उसके सिर के चांदी के समान बाल चमके। उसने छोटी बारीक आंखें किसी कलाकार की भांति घुमाई, 'आ जाओ...बैठो...आपका स्वागत है।' मैंने घुटनों के बल बैठते ही स्वर-मंडल की तारों से उंगलियां छुईं। मीठी धुन उभरी। बादलों से प्यारी-प्यारी, हल्की-हल्की बूंदा-बूंदी बरसने लगी।

'मैं इंडिया से आया हूं...हमारे यहां तो इससे भी बड़े-बड़े साज़ हैं, और आपका यह छोटा सा...बहुत ही प्यारा है आपका सुर-मंडल।'

'धन्यवाद आपका प्यारे, मेरा सुर-मंडल पसंद करने के लिए...धन्यवाद आपका।'

'यहां क्यों रखे बैठे हो इन साज़ों को?' मैंने उसके दो-तीन साज़ों को देखा।

‘बेचने के लिए।’ उसने बताया।

‘बजा भी लेते होगे फिर तो तुम इन्हें?’

यह सुनकर वह चुप सा हो गया, या फिर उसे मेरी टूटी-फूटी अंग्रेजी में पूरी बात समझ नहीं आई।

‘हां, पर...अब तो मैंने इन्हें बेचने के लिए ही रखा है।’ उसकी आवाज में दुख-सा था।

‘क्यों? यह साज़ और भी हैं तुम्हारे पास?’

‘नहीं...नहीं...और नहीं हैं...हां, वैसे और साज़ भी हैं मेरे पास...घर पड़े हैं, धीरे-धीरे वह भी बेच दूंगा, बहुत समय हो गया है इन्हें बजाते और संभालते, मेरी उम्र बहुत हो चली है, मैं बूढ़ा हो गया हूं, मेरे घर में इन्हें संभालने वाला कोई नहीं, कौन संभालेगा इन्हें मेरे बाद? फिर यह अकेले रह जायेंगे। इन्हें मिट्टी व अकेलापन खा जायेगा। मुझे पता है...अकेलापन क्या चीज़ होती है, अब तो बेशक यह मेरे परिवार के सदस्य है, पर अब मैं इन्हें भी बेच दूंगा।’

‘आप कह रहे हो कि मैं अकेला हूं घर पर? और आप इन्हें अपने परिवार का सदस्य मानते हो, फिर अकेले कैसे हुए?’

वह कुछ नहीं बोला। उसकी आंखों के किनारों से पानी निकल आया था। उसके होंठ फड़के और वह उदास हो गया था। मैं उसके साज़ों की ओर देखता जा रहा था।

‘कितने पैसे लोगे इस नन्हें सुर-मंडल के?’

‘जो भी तुम दे दोगे...वही।’

मैं उसकी फक्कड़ता पर हैरान हुआ, परंतु साथ ही उदास भी क्योंकि एक संगीतकार उदास है।

‘अच्छा फिर...यह दे दो मुझे।’ मैंने उसके साज़ों से छोटा सुर-मंडल अलग निकालते हुए कहा। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट फैली दिखाई दी। साथ ही मैंने अपना पर्स निकाला और पूछा, ‘हां, बताओ...कितने पैसे दूं इसके?’

‘तुम्हें कहा न...जो मर्जी दे दो, फिर क्यों पूछते हो मुझे?’

‘नहीं, चीज़ तुम्हारी है...मोल भी तुम ही बताओ, मैं थोड़ा बताऊंगा मोल?’

'तुम कुछ और न कहो...जो मर्जी दे दो।' उसने कहा।

'अच्छा फिर...लो तुम अपनी मर्जी से निकाल लो...जितने लेने हैं, खुद लो।' मैंने खुला हुआ बटुआ उसके आगे कर दिया।

उसकी आंखें चमकीं। होंठ मुस्कुराये। बोला, 'थैंक्स मेरे प्यारे...तेरा बहुत थैंक्स।'

उसने पचास पौंड का एक नोट निकाला और झट से जेब में डाल दिया। कहने लगा, 'इतने ही बहुत हैं प्यारे...धन्यवाद।'

मैंने सुर-मंडल उठाया और अपने सीने से लगाकर चल पड़ा।

'बात तो सुनो...एक मिनट आओ...आओ न एक मिनट!'

उसके कहने पर मैं फिर मुड़ा। डर लगने लगा कि कहीं यह न कह दे, कि ये ले अपना पौंड और मेरा सुर-मंडल यहां रखो?

'मुझे बता मेरे प्यारे...तुम इंडिया में क्या करते हो!'

'मैं...? मैं साज़ों को प्यार करता हूं, इनके बारे में लिखता हूं, इन्हें बजाने-इस्तेमाल करने वाले अच्छे लगते हैं, उन्हें मिलता हूं, बहुत से मेरे दोस्त हैं, उनके बारे में लिखा भी है कई किताबों व सैकड़ों कॉलमों में।'

'ओ...सच?'

'हां...और झूठ?'

'मेरे घर कब आओगे तुम? मैं तुम्हें अपना साज़ दिखाऊंगा...मेरा नाम रॉबर्ट है।'

'जब कहोगे...मैं दस दिनों बाद अपने देश इंडिया वापिस चला जाऊंगा...तुम देख लो...जब कहोगे, मैं आ जाऊंगा।'

'पक्का बोल रहे हो कि टालने की कोशिश है...आप इंडियन टालते भी बहुत हो ना।'

'टालना क्यों...पक्का है मेरे यार।'

उसकी बांछें खिल गई थी, जैसे कोई गुम हो गई चीज मिल गई हो उसे! उसने एक कागज के टुकड़े पर अपना फोन नंबर, पता, नाम आदि सब लिखकर दिया और मेरा फोन नंबर भी लिख लिया।

'तुम्हें कल शाम फोन करूंगा मैं...पक्का है, ठीक है न मेरे प्यारे?'

उसका बात-बात पर 'मेरे प्यारे...मेरे प्यारे' कहना बड़ा प्यारा लगता था मुझे।

उसके घर में पड़े साज़ को देखने की मेरी उत्सुकता बढ़ गई थी। कब अगले दिन की शाम आये और मैं उसके घर जाऊं! उसका फोन नहीं आया था। आखिर, इंतजार कर-कर के मैंने ही फोन किया पर किसी ने नहीं उठाया। मैंने अपना संदेश रिकार्ड करवा दिया था।

तीन दिन बाद, उसका मेरे फोन में रिकार्ड किया हुआ लंबा संदेशा मिला, क्योंकि जब उसने मुझे फोन किया था, मेरा फोन बंद या व्यस्त होगा, इसलिए मैसेज पर चला गया था। अपने संदेश में उसने बताया कि जिस दिन हम मिले उस दिन उसके तीनों साज़ बिक गये और वह हल्का-फुल्का होकर अपने घर चला गया था। उसने घर जाकर खूब रैड वाईन पी थी और थोड़ा खाने के बाद जल्दी सो गया था। जब आधी रात हुई तो वह अपने आप को गुम-सुम व खुरदरा सा महसूस करने लगा। फ़ोन करके एंबुलैंस मंगवाई और अस्पताल में दाखिल हो गया। कल छुट्टी मिली है। उसने बड़े प्यार से, जैसे अनुरोध करके कहा था–'माई डियर, कल आप शाम को मेरे घर आ जाओ...मुझे आप मिलने आओ।'

मैं जिस रेडियो स्टेशन में संगीत डाक्युमैंट्री तैयार कर रहा था, उसके मालिक-संचालक से जाने की आज्ञा मांगी तो उसने ना में सिर हिला दिया। मैंने उदास होकर अपना मोबाइल स्विच ऑफ कर दिया।

अगले दिनों में पल भर की फुर्सत नहीं बची थी और मुझे सप्ताह भर के लिए बर्मिंघम चले जाना था। मेरे अपने देश में वापिसी के दिन थोड़े ही बचे थे। बर्मिंघम से वापिस आने के बाद मैंने उसका हाल-चाल जानने के लिए फोन किया तो किसी ने नहीं उठाया। अब देश वापिस आने के लिए दो दिन बचे थे। एक शाम, एक पाठक-मित्र मिलने आया और पूछा कि कहीं घूमने-फिरने जाना है तो चलो। मैंने उसे अपने बीमार संगीतकार मित्र रॉबर्ट का हाल पूछने जाने की इच्छा जताई और संगीतकार के घर जाने वाला कागज पर्स से निकालकर मित्र को दिया। जाने से पहले फोन किया पर किसी ने नहीं उठाया। हम लगभग आधे घंटे में वहां पहुंच गये।

एक झील के किनारे उसका छोटा-सा घर था, जैसे किसी ने बना-बनाया डिब्बा लाकर रख दिया हो। साफ-सुथरा और शांति भरा वातावरण। कल-

कल करके बहती झील...कोई-कोई किश्तियां तैरती दिख रही थी, बत्तखों के झुंड भी तैर रहे थे। घर के आस-पास पेड़ों व घनी बेलों का जमघट...हरियाली ही हरियाली चारों तरफ।

'हैं...?' इतनी सुंदर जगह पर रहता है संगीतकार रॉबर्ट? यह तो स्वर्ग है, स्वर्ग...।' मेरे मुंह से खुद-ब-खुद निकल गया। साथ गये मित्र ने बताया कि, 'यह हमारे शहर का सबसे महंगा व साफ-सुथरा इलाका है, यहां पुराने बसे हुए गोरे ही रहते हैं, हर कोई नहीं रह सकता यहां।'

मैं पशोपेश में हूं, शायद घर पर मिलेगा भी कि नहीं रॉबर्ट। यदि मिलेगा तो किस तरह का व्यवहार करेगा। कितना वक्त मिलेगा। सोचता हुआ घंटी का बटन दबाता हूं। छोटा सा घर अंदर-बाहर से पूरी तहर खामोश है। लगता है कि कई दिनों से यहां कोई आया-गया ही न हो। कोई रिस्पांस नहीं। हमारी थाह लेकर साथ वाले घर से एक गोरा दरवाजा खोलता है, 'किससे मिलना है आपको, रॉबर्ट को?'

मेरे हां कहने पर वह एक सांस में ही बताता है–'उसका कुछ दिन पहले देहांत हो गया, परसों उसका संस्कार कर दिया गया है, वह लंबे समय से बुरी तरह डिप्रैशन का शिकार हो चुका था। वह बहुत विख्यात संगीतकार था। वह सुर-मंडल का ही उस्ताद था। बहुत प्यारा बजाता था वह सुर-मंडल। उसकी पत्नी व बच्चे बहुत समय पहले उसे छोड़ गये थे क्योंकि वह सारा समय संगीत सृजन में ही लगा रहा। उसके परिवार को सूचित कर दिया था पर वह नहीं आये। मुझे भी बहुत दुख है कि मेरा पड़ोसी संगीतकार नहीं रहा है, मेरे पड़ोस में रहते एक प्यारे से 'साज की मौत' हो गई है, अफसोस है कि आप भी अब उसे नहीं मिल सकते, ओके...बॉय..बॉय टेक-केयर...थैंक्स।'

यह कहकर उसने दरवाजा बंद कर लिया था। मेरी आंखें भर आई थीं। उदास मन से मैं और मित्र कार के पास आये थे। भारत वापिस आते हुए, सुर-मंडल को नये तौलिये में लपेट कर अटैची में रखते मन भर आया था। अब जब भी कभी अपनी निजी अलमारी खोलता हूं, उस 'सुर-मंडल' पर निगाह डालते ही रॉबर्ट की निजी याद ताजा हो जाती है। सुर-मंडल को लपेटे हुए तौलिये के किनारों से अपने आंसू कई बार पोंछ चुका हूं।

# चुप्पी के आगोश में

मेरे उस मेज़बान के लंदन में कई घर थे, जो उसने किराये पर चढ़ा रखे थे। आज वह जहां मुझे छोड़कर गये थे, वह उनका एक बड़ा फार्म हाऊस था, जो उन्होंने कुछ महीने पहले ही किसी बूढ़े गोरे से बहुत महंगा खरीदा था। इसके आसपास दूर-दूर तक खेत व बंद डिब्बों जैसे कम घर दिखते थे। मुझे यहां दो दिन रहना था। मेरे मेज़बान ने मुझे यहां छोड़ने के बाद अपनी बेटी को लेने बहुत दूर यूनिवर्सिटी जाना था। स्पष्ट था कि वह दो-दिन बाद ही तब मिलता जब वह वहां से लौटता और मुझे इस घर से वापिस अपने ठिकाने पहुंचना था। मेज़बान व उसका बाकी परिवार काफ़ी दूर कहीं छोटे से शहर में रहता था। जब हम इस फार्म पर आने लगे तो उसने रास्ते में आने वाले एक छोटे से ग्रासरी स्टोर से मेरे लिए दूध, आईसक्रीम, चिकन, चिप्स, मछली, सलाद, रैड-वाईन व ब्रैड आदि ले लिए। यह सारा सामान पूरे एक सप्ताह के लिए काफी था परंतु मुझे तो वहां सिर्फ दो दिन के लिए ही रुकना था।

फार्म के चारों ओर हरे पेड़ों व बेलों का जमघट था। पेड़ों के चारों ओर घनी झाड़ी-बूटी ने पैर पसार रखे थे। फार्म को देखने से लगता था कि जैसे लंबे समय से यहां कोई नहीं रहता था। लगता था मानो पल-पल चुप्पी का पहरा हो।

खाने-पीने का सामान व अपना बैग कार की डिग्गी से निकालने में मैंने मेजबान की सहायता की। जहां मेरा बैग रखा गया, इस छोटे से कमरे में कितना कुछ सलीके से अपनी-अपनी जगह टिकाया हुआ था, यह देखकर मैं दंग रह गया कि कम जगह का इस्तेमाल बहुत अच्छे से हुआ है। कमरे से एक छोटा सा दरवाजा बाथरूम की ओर खुलता था।

एक कोने में छोटे टेबल पर चाय बनाने वाली केतली पड़ी है। छोटी सी खिड़की पर लाल परदा लगा हुआ है। एक तरफ छोटी से पुरानी अलमारी, जिसमें कपड़े टांगने के लिए हैंगर लटके हुए हैं। बैड बहुत नीचे और छोटा है। गद्देदार मोटा लाल कंबल पड़ा है। खाने-पीने का सामान लिफाफे से निकाल कर अलमारी के पास रखे छोटे फ्रिज में रखा गया। मेज़बान ने टेबल पर रखी

केतली उठाई और बाथरूम से पानी भरकर मुझे समझाया, 'ये देखो...यह ऑन व ऑफ का स्विच है, चायपत्ती की पुड़िया इस डिब्बी में है और यह चीनी वाली डिब्बी है, दूध फ्रिज में है और यह चम्मच पड़े हैं और यह प्लेटें व चम्मच।'

जग जैसे बड़े एक कांच के गिलास की ओर इशारा करते मेज़बान बोला, 'यह बीयर या वाईन पीने के लिए है, फ्रिज भरा पड़ा है बीयर से...ठंडी-ठंडी निकालो और चुस्कियां लो और इस टब में नहाने के लिए गुनगुना पानी भर लेना और लेट जाना...तुम्हारा शरीर धीरे-धीरे हल्का हो जायेगा, और यह पड़े हैं शैंपू व साबुन।'

बाथरूम से आकर वह फिर बताने लगा, 'जो चीज भी गर्म करनी है, प्लेट में डालकर ओवन में रखो, घीं-घीं की आवाज आने पर बाहर निकालो, ओके है? बॉय-बॉय, मिलते हैं परसों को, ओके टेक केयर।'

मेज़बान की कार ने थोड़ा घुर्र-घुर्र किया और चलती बनी। मैं उस छोटे से कमरे के अंदर कुर्सी पर बैठकर अपना मोबाइल फोन देखने लगा। सिगनल उड़ गया था। सो, जाहिर था कि यहां यह नहीं चलेगा। घर के किसी कोने पर जरूर ही लैंड-लाइन या इंटरनैट होगा। यह सोच कर मैं कमरे से निकला और लैंड-लाइन फोन ढूंढने लगा। सभी कमरों में ताले लगे हुए थे। दरवाजे-खिड़कियां बंद थी। चक्कर लगाकर मैं फिर कुर्सी पर आकर बैठा। छोटे कमरे के अंदर छोटे आकार की वस्तुओं को देखकर मैं सोचने लगा कि जैसे यह सब वस्तुएं इस छोटे कमरे के अनुसार ही बनी व खरीदी गई हैं? सब वस्तुओं के बड़े करीने से लगे होने के कारण कमरा खुला-खुला सा लग रहा था। गर्म पानी से मुंह-हाथ धोया और जैसे ही कपड़े बदलकर बैड पर बैठा तो वह एकदम काफी नीचे धंसने लगा और फिर धीरे-धीरे ऊपर को उठने लगा और हल्का-हल्का झूला लगने लगा। हैं? वाह भई वाह, क्या बात है, यह विलायती बैड है कि झूला? पलों में ही नींद ने अपने आगोश में ले लिया। मुझे नहीं लगता कि मैंने करवट बदली होगी। जब जागा तो कमरे में अंधेरा प्रवेश कर चुका था। बत्ती जलाई और खिड़की खोलकर बाहर की ओर देखा। फार्म हाऊस के आसपास लंबे खंभों पर बत्तियां जल चुकी थी। कौन जला गया था यह बत्तियां? कोई नहीं! खुद-ब-खुद जली हैं यह बत्तियां! अंधेरा-सवेरा देखकर अपने आप जलने-बुझने वाली हैं यह अद्भुत विलायती बत्तियां!

शायद, अब तक तो फोन का सिगनल आ ही गया होगा! मोबाइल फोन देखा, वह तो बुरी तहर खामोश था, नामो-निशान ही नहीं था सिगनल का। आज दोपहर से पहले तो 'चुप्पी के आगोश' में था और एक मस्ती का आलम सा महसूस हो रहा था। सोचता हूं कि क्या सच ही चुप्पी सुखद होती है, ऊर्जा देती है? चुप समाधि की ओर लेकर जाती है। ऐसे ही तो नहीं हमारे ऋषि-मुनि व संत महात्मा चुप्पी धारण कर जंगल की ओर कूच करते रहे थे। शिव ने चुप के बारे में कितना सुंदर लिखा हैः

चुप दी आवाज़ सुनो
चुप दी आवाज़
मेरी चुप संग सौ जन्मा तो यारी है
मैंने सपनी दी अक्ख विच गुज़ारी है
चुप दी आवाज़ सुनो...

दिल किया, फार्म के आस-पास चक्कर लगाया जाये। बाहर आया हूं तो बाहर भी सन्नाटा है! चारों ओर सन्नाटा ही सन्नाटा! जैसे बाहरी सन्नाटा, मुझे खाने को पड़ा हो। झट से अंदर चला जाता हूं। एक पल बिलकुल उलट लगने लगता है कि सन्नाटा व शांति बहुत ही भयानक होती है, बहुत ही भयानक! कितना अजीब संसार है सन्नाटे का!

आज सुबह के बाद कुछ बोला भी नहीं और न ही कानों ने कुछ सुना है, सिवाय हवा की सरसराहट के! सोचता हूं कि, क्या फार्म हाऊस में सभी पंछियों को आज सांप सूंघ गया है? हिले तक नहीं। पंछियों व सांपों के बारे में सोचने लगता हूं। नहीं नहीं, जरूर होंगे यहां मन-मोहनी आवाज़ों वाले विभिन्न प्रकार के सुंदर पंछी, यह बोल चुके होंगे जब शाम में मैं सो रहा था। सुबह गाते जरूर सुनूंगा इन पंछियों को।

पेड़ों के झुरमुट व घासफूस के जमघट में सांप भी जरूर होंगे। बड़े वर्ष हो गये, एबटसफोर्ड वाले अंकल बंत सिद्धू का कहा याद आया कि जिन फार्मों में लोग नहीं रहते...वहां सांप वास करते हैं। अंकल ने बताया कि उनके एक सूने फार्म हाऊस में भी एक बार सांप आकर रहने लग पड़े थे। सांप तो यहां भी जरूर होगा! कमरे के हर कोने, झिर्रियों में देखने लगता हूं। कमरे में लाल रंग का कार्पेट बिछा हुआ है। कोई बड़ी सी जगह नहीं आती। कहां से आयेगा यहां सांप? नहीं आयेगा सांप।

आज कितना अच्छा होता कि यदि मेरे बैग में कोई किताब होती या रेडियो होता। कागज़ होते, मैं लिख लेता। उस दिन किताब की कमी महसूस हुई। किसी की आवाज़ सुनने के लिए मन बेचैन हो गया था। ऐसा लगा मानो कागज़ व कलम से बिछुड़ गया होऊं। आज की पूरी रात व अभी तो कल का पूरा दिन और फिर अगली रात पड़ी है। परसों मेजबान वापिस आयेगा और इस जेल से निकालेगा। रंग-बिरंगे विचारों की घुड़दौड़ में से मन तब निकला जब वाईन की शीशी की ओर हाथ बढ़ा और कुछ पलों के बाद लगा कि दूर कहीं से इकतारे(तुंबे) की गहरी सुर व बोल एक दूसरे की अंगुली पकड़े आ रहे हैं। याद आया कि मेरे बैग में तो इकतारा पड़ा हुआ है। जल्दी से बैग में से छोटा-इकतारा निकाला तो खुद-ब-खुद उंगली की पोर तार से छूह गई...'टुणन'...की बारीक धुन ने कानों को सुर के अंग-संग साकार होने का अहसास करवाया है। 'की जाना ओ कौन मैं बुलिया...की जाना मैं कौन'! जब तक यह नगमा गाया था, तब तक की तो याद है, बाद में कितना समय, क्या-क्या गाता रहा था, बिलकुल भी याद नहीं।

अगले दिन की दोपहर को जागा, जब चुप्पी सताती है तो इकतारा उठा लेता, यह बजता जाता...कभी दो पोर...एक पोर...कभी तीन पोर व कभी चार पोर लगते जाते।

अगले दो दिन भी इकतारे का साथ बड़ा सुहावना रहा। उस्ताद बड़े याद आये, जिन्होंने इस इकतारे का निर्माण किया था। यदि यह इकतारा न होता तो मैं ठंडी धरती के अकेले घर में किसके साथ गाता? चुप्पी से? इसलिए यह इकतारा मेरा पक्का व प्यारा मित्र बन गया, जिसने कहर समान परदेसी चुप्पी के दिनों में मेरा साथ दिया।

दूसरे दिन की सुबह, अभी उठकर चाय का कप तैयार ही किया था कि बाहर से 'घुरर्र-घुरर्र' की आवाज़ सुनाई दी। मन अनोखी खुशी से मचलने लगा कि मेरा मेजबान आ गया है, अब इंसानी आवाज सुनने को नसीब होगी, अब मैं चुप्पी की जेल से रिहा होकर अपने प्यारों के बीच चला जाऊंगा। चाय का कप मेज पर रखकर जल्दबाजी से दरवाजे की कुंडी खोलता हूं, बाहर कुछ भी नहीं है। शायद कानों को मेजबान की कार की 'घुरर्र-घुरर्र' का भ्रम ही हुआ था। कुंडी लगाकर दुखी मन से कुर्सी पर आकर बैठा और गुनगुनी हो गयी चाय का घूंट भरते पास पड़े इकतारे की ओर देखने लगा।

# विलायती बैसाखियां

विलायत से आये हुए मुझे तीन सप्ताह होने लगे हैं। अंकल का फोन तीन-चार बार आ चुका है। पूछते हैं-'बेटे तुम ठीक हो, क्या हाल है, क्या कर रहे हो, मौसम कैसा है, घर-परिवार का क्या हाल है?' छोटी-छोटी, निजी व अपनेपन से भरी बातें! जैसे कोई पिता अपने विलायत गये बेटे को फोन कर पूछता हो, बिलकुल वैसे ही।

अंकल बहुत मजबूत इंसान हैं। शरीफ तो इतने हैं कि इसका कोई अंत नहीं। बहुत ही शरीफ! जो मुंह पर है, वही मन के अंदर है। बिलकुल भी झूठ नहीं। अंकल इस कहावत को बिलकुल भी मानने वालों में से नहीं हैं कि अपनी कमीज उठाई तो अपना ही शरीर नंगा होता है! वह धीमा बोलकर बात करते हैं। चालीस वर्ष पहले विलायत आये अंकल विलायती नहीं बन सके, बिलकुल देसी पंजाबी। उनके अंदर का 'भारतीय पंजाबी' कुछेक पंजाबी दिलों की तरह अभी भी जिंदा है। वह विलायती रंग में पूरी तरह नहीं रंगे।

वह बताते हैं, 'तेरी आंटी को पता नहीं क्या होता जाता है...अब उसने गुरुद्वारे जाना भी कम कर दिया, गुरुद्वारे जाकर भी अपनी सहेलियों से लड़ने-झगड़ने लग जाती है, कभी-कभी हंसने लग जाती है...कितनी देर रोती ही जाती है, पता नहीं लगता कि उसे दिनो-दिन क्या होता जा रहा है, अपने कमरे में घुसकर पड़ी रहती है...आगे तो सुबह की रोटी गुरुद्वारे में खा लेती थी, अपनी सहेलियों से टाइम पास कर आती थी, अब दिन का खाना खाना बंद कर दिया है...मुझे तो पता नहीं लगता...क्या करूं...क्या न करूं।'

अंकल का फोन सुनकर मुझे उनपर तरस आ रहा है। पर मैं कर भी क्या सकता हूं? सिवाय हमदर्दी या फिक्र के? हौंसला देने के।

अंकल की उम्र सत्तर वर्ष है। पूरे पक्के सरदार। दाड़ी को रंग लगाकर बांधते हैं। सुंदर घर में रहते हैं। इस घर के अलावा उनके पास तीन-चार और भी घर हैं जो उन्होंने किराये पर चढ़ाये हुए हैं। अंकल हर सप्ताह उनसे किराया लेने जाते हैं। जितने हफ्ते मैं उनके पास रहा, उतने हफ्ते मैं उनके

साथ किराया लेने जाता रहा। अंकल पहले किरायेदारों को फोन करके उनसे टाइम सैट कर लेते। जब हम घर के अंदर जाते तो हर बार किसी-न-किसी की, कोई-न-कोई शिकायत होती। कभी घर को हीट देने वाला गैस बुआइलर खराब है। कभी कोई तख़्ती या कुंडी टूट गई है। कभी सिंक में कुछ फंस गया है। कभी टायलेट रुक गया है। इन्हें ठीक करने के प्लंबर सौ पौंड लेता है। कभी रसोई के चूल्हे में कोई खराबी आ गई है। सुन-सुनकर अंकल खीझ जाते। प्लंबर को अपने सैल फोन से फोन मिलाते। यदि वह मरम्मत के जायज़ पैसे मांगता तो अंकल घर का पता समझा देते।

वह बताते-'घरों के अंदर मैंने भांति-भांति की लकड़ी इकट्ठा की हुई है, किसी एक पूरे परिवार को मैं घर नहीं देता, एक-एक कमरा चढ़ाता हूं, बाथरूम व रसोई सबके सांझे, बारी-बारी प्रयोग करो, न ही मैं किसी एक कम्युनिटी के तबके के लोगों को घर देता, नहीं तो वह लोग एकजुट होकर मकान मालिक के खिलाफ जुट जायेंगे, है न मेरी बात सच्ची?'

'बात सुनों मेरी बेटा, तुम सोचते होगे कि अंकल पता नहीं कितनी कमाई कर रहा है किराये के घर से...सारी उम्र तो घर लेने-बनाने में बीत गई, बचत कुछ भी नहीं है, कर्जा भी अभी उतरा...कभी कोई किरायेदार भाग जाता है साला, फिर पेपर में विज्ञापन देता हूं कि कमरा लेना हो तो खाली पड़ा है...कोई एक मुसीबत थोड़ी है यहां?'

---------

अब आपको यह बताता हूं कि अंकल से मेरी मुलाकात कैसे हुई। पांच-छह सालों से अंकल मेरे कॉलम विलायत में छपने वाली पंजाबी अखबार 'रणजीत वीकली' में पढ़ते आ रहे हैं। उन्हें अच्छी पुस्तकें, स्तरीय फिल्में व अच्छे संगीत से बहुत मोह है। मुझे अंकल ने इंडिया बहुत बार फोन कर विलायत आने का निमंत्रण दिया। अब जब मैं अपने कुछ दोस्तों के बुलावे पर विलायत पहुंचा तो यह कैसे हो सकता है कि मैं अंकल को फोन न करता? इंडिया से भी अंकल को फोन किया था कि मैं लंदन आ रहा हूं। अंकल इंतजार करते रहे। वहां पहुंच कर मैं बीस दिन तो अंकल के शहर ही नहीं जा पाया। पर अंकल रोज फोन करके मेरा हाल-चाल जानते, कहां हो? क्या कर रहे हो, कोई दिक्कत तो नहीं?

जब मैं कोच में बैठकर अंकल के शहर पहुचां तो वह बस अड्डे आकर

मुझे ले गये। रास्ते में जाते हुए उन्होंने बड़ी बेबाकी से कहा, 'बेटा, बुरा मत मानना...तुम्हारी आंटी का नेचर अच्छा नहीं है, मेरे साथ बड़ी देर से अनबन है, बेशक इकट्ठे रह रहे हैं...परंतु न जैसे हैं। प्लीज़...बेटा तुम बुरा मत मानना, मैं तुम्हें सबकुछ बताऊंगा, वैसे तुझे वह अच्छे से मिलेगी, तेरा अपना घर है...जितने दिन मर्जी रहना, वह अपनी धुन में मस्त है...बच्चे पास नहीं...तुझे फिर बताऊंगा, ओ.के पुत्तर...डोंट वरी...यू आर वैलकम पुत्तर।'

मेरे कमरे में मेरा बैग रखा। आंटी गुरुद्वारे गयी हुई थीं। हम पब चले आये। रात देर से घर आए। आंटी सोई हुई थी। दूसरे दिन सुबह आंटी अच्छे से मिली। आगे-पीछे की खैर-सुख पूछी उन्होंने। पर चुप-चुप थी।

मेरे लिए आंटी का स्वभाव अच्छा...पर अंकल को टोकती रहती है। कभी अंकल के मां-बाप की निंदा करने बैठ जाती। कभी अंकल में नुक्स निकालती, 'स्वाह व उलजुलूल...क्या बना लिया तुमने...अब तक तब आये लोगों ने क्या कुछ नहीं बना लिया? तुमने तीनों बच्चे भी हाथ से निकाल दिये, मुझे इग्नोर करते रहे और खुद गोरियों के साथ क्लबों में धक्के खाते रहे।'

अंकल गुस्से में गर्म हो जाते हैं। दोनों की सुईयां शिखर में चढ़ जाती है। मैं दोनों को चुप करवाता हूं। इनके पास बहुत दिन रहा। मुझे अंकल-आंटी का भेद मिल गया था।

'देख ले...मुझे झूठा कर रही है यह, मैंने कब हाथ से बच्चे निकाले? तेरा भी बराबर का हिस्सा है...बच्चे हाथ से निकालने में...मुझे फालतू मत बोलो...अननसेसरी'

सच्चे दोनों हैं। पर हालात ही ऐसे बने कि अब दोनों को, एक दूसरे से झूठ बोलना पड़ रहा है। लड़ते हैं, अकले हैं, कुढ़ते हैं। असुरक्षा सी महसूस करते हैं। आंटी के मायके वाले मर चुके हैं। भतीजे-भतीजियां दूर-दराज देशों में। कौन पूछता है इन देशों में किसी को? पेट से पैदा किये हुए बच्चों के पास भी फुर्सत नहीं यहां। बेगाने तो बेगाने ही होते हैं।

एक दिन मैंने अंकल को पूछा—'अंकल, क्या यह सच है कि यहां का यह कल्चर है कि साठ वर्षीय, सत्तर फीसदी लोगों के बच्चे उनके पास नहीं, ज्यादातर लोग यह भी नहीं जानते कि उनकी औलाद रहती कहां है।'

'हां पुत्तर...सच है...हम तुम्हारे सामने ही हैं।'

मुझे उन दोनों की बात सुनकर उन पर तरस आने लगा था। कभी दोनों

एक-सुर होकर रहते थे–'यह विलायत खा गई हमें...क्या पाया यहां आकर...इससे तो अच्छा अपने देश में थे। अपने बच्चे व अपना समुदाय तो अपने पास होता इस समय।'

आंटी की यह बात भी मुझे खासी चुभी कि वह रसोई में जाती और अपने लिए खाना बनाकर बाहर आ जाती। अंकल अपने लिए अलग खाना बनाते। एक दिन मैंने दोनों को अंडों की करी के साथ बेसन की बनी रोटियां बनाकर खिलाईं। दोनों बहुत खुश हुए। मैंने कहा था–'जितने दिन मैं हूं...उतने दिन खाना बनाकर दिया करूंगा, इसी को मेरी सेवा मानना।'

आंटी कहती–'नहीं भाई, आप इंडिया वाले नमक-मिर्च बहुत तीखा खाते हो, मैंने तो अपनी मर्जी का खाना होता है।'

अंकल व मैं एक जैसा खा लेते। शाम को हम पब जाते। हमारे वापिस आने तक आंटी खा-पीकर सो जाती। मैं चार फुलके बनाता। दो अंकल के लिए, दो अपने लिए, अंकल सब्जी-दाल गर्म करता। जिस दिन रोस्ट चिकन व सलाद होता, उस दिन रोटी नहीं खाते थे। जिस दिन मेरा कहीं कोई कार्यक्रम होता, अंकल साथ ही जाते थे। हमारे मेजबान घर से ले जाते और छोड़ जाते। अंकल की साफगोई मेरे मन को बहुत छूती थी। उन्होंने मेरे साथ जितनी भी बातें की, पूरे पवित्र हृदय से की। एक दिन अंकल ने पब में मुझे कहा था–'पुत्तर, जितनी ताकत कलम में होती है उतनी तलवार या बंदूक में भी नहीं होती। तुम तो खुद लेखक हो, लेखकों को सच लिखना चाहिए। तुम मेरी बताई बातें लिखना परंतु कहानी के रूप में...गोल-मोल ढंग से...यदि तुम लिखोगे तो बहुत से लोग पढ़ेंगे, कुछ तो लोगों पर असर होगा ही, तभी मैंने कहा है तुम्हें, कलम की शक्ति सब से अधिक होती है...धकेल धकेल कर...भई विलायत जाओ, इससे तो कुएं में धकेल दें, बेटे, यहां पौंड पेड़ों से नहीं लगते...बई जितनी मर्जी तोड़ते जाओ और इंडिया भेजते जाओ। मेरी कहानी लिखना तुम...मैं तुम्हें अपनी बातें बताऊंगा, हो सकता है किसी एक आध को कुछ अकल आ जाये। यह विदेश अंधेरी कोठड़ी है, क्या जिंदगी है?

न छोड़ने को दिल करता है...न रहने को...यदि छोड़कर जाते हैं...इंडिया रहने योग्य नहीं है...कैसे रहेंगे कहां रहेंगे? गांव में रात को कोई सोते हुए काट जाये दोनों को...इंडिया में कितने एनआरआईज़ को मार दिया गया...कोई

सपोर्ट नहीं करता...कोई गवाह नहीं बनता, जैसी पुलिस, वैसी अदालतें और अंधा कानून, आज इंसान का कत्ल करो, कल बरी हो जाओ, बेटा, सच बात है, हम तो वहां भी परदेसी हैं और यहां भी परदेसी हैं, परदेसीपन हमारा पीछा नहीं छोड़ता, सारी उम्र निकल चली, कौन परवाह करता है गांव आये की? और यहां मन ही बुझ गया है। न घर के हैं, न घाट के हैं...धोबी के कुत्ते की तरह, ऐसे भी कह सकते हो कि सांप के मुंह में छिपकली वाली बात है...न खाने लायक...न छोड़ने लायक हैं। '

अंकल की इन बातों ने मुझे विलायत के भिन्न-भिन्न रंगों व वहां के पंजाबी जन-जीवन के बारे में गंभीरता से सोचने के लिए मजबूर कर दिया था, क्योंकि पहले उतनी गंभीरता वाली नजर से नहीं, बल्कि आम नजर से देख रहा था मैं पंजाबी लोगों को! यदि गौर से देखा जाये तो अंकल-आंटी के जीवन का यह दुख छोटा सा नहीं, बल्कि बहुत बड़ा था।

-----------

'बेटा, दो बातें जिंदगी में अहम होती हैं, पहली औलाद व दूसरी जायदाद...और हम दोनों ही गंवा बैठे हैं। हम ही अकेले नहीं बेटा...हमारे जैसे और बहुत हैं,अठारह साल बाद मैं इंडिया गया था, साथ तुम्हारी आंटी भी गई थी, मेरा एक भाई मर गया था...भोग के कई दिन बाद की बात है, एक दिन दोपहर में मैंने अपने भतीजों को कहा कि आओ जायदाद का कुछ हिसाब-किताब कर लें, इतने सालों में तुमसे कुछ नहीं लिया। बड़े भतीजे ने जवाब दिया कि कोई बात नहीं ताया, फिक्र मत करना...रात को करेंगे...करते हैं तुम्हारा हिसाब-किताब...फिक्र मत करो...देखते जाना रात में...मैं भतीजे के बोलने के लहजे से समझ गया कि यह किस लहजे में बोल रहा है...मैंने तुम्हारी आंटी को कहा बस अब निकल चलें यहां से, कुछ पूछना मत, भतीजों के तौर-तरीके बदले हुए थे और हम अपना बैग उठाकर निकल आये, उस दिन के बाद मैं गांव नहीं गया, जमीन तो क्या वापिस लेनी थी? वह भी हाथ से निकली। तुम्हारी आंटी की जिद ने शहर में बहुत पैसे लगा दिये मेरे, मैं बहुत कहता रहा कि क्या फायदा इतने पैसे बहाने का? इसकी जिद के कारण मेरी एक न चली। कहने लगी तीन मंजिल बनानी है। बच्चे आया जाया करेंगे इंडिया, बना दी, कौन हर साल जाये, जब काम ही नहीं कोई वहां? न कोई मोह-प्यार देने वाला ही रहा, बच्चे भी तब से एक-आध बार गये होंगे, अब

उसका कौन वारिस है? तीनों बच्चों के लिए बनाया था, जब कोई पास ही नहीं हमारे, ज्यादातर लोगों के बच्चे तो कहते हैं कि हमने इंडिया नहीं जाना, हम क्या करेंगे आपकी जमीन व कोठियां...अपने सगे संबंधी ही कब्जा कर बैठे हैं, क्या इधर वाले उधर वालों से कब्जा छुड़वा लेंगे? नहीं, कभी भी नहीं, उधर वालों के पास इतनी ताकत है, वो कहां इन्हें कुछ समझते हैं, यहां के पले बड़े ज्यादातर नौजवानों की इंडिया में कोई रुचि है ही नहीं, न अपने रिश्तों या कबीले से कोई वास्ता है...उधर वाले कहां समझते हैं यह हमारे अपने हैं, पराया ही समझते हैं अपने खून के रिश्ते वाले भी। हमारी बेटी ने काले से शादी करवाई, अमेरिका चली गई, पता नहीं कहां है, लड़का यहां है...गोरी के साथ रह रहा है, शादी नहीं करवाता...कहता है मैं कुत्ते की जिंदगी में नहीं पड़ना चाहता, जब इस गर्लफैंड से मन भर जायेगा तो इसे छोड़ दूसरी ढूंढ लेगा। कभी फोन तक नहीं करता, मिलने तो क्या आता, सात साल हो गये हैं...और सबसे छोटा सैंडी को दस साल हो गये घर से गये हुए। एक दिन बहस करके घर से निकल गया, पता नहीं कहां गया...ना अता-पता, औलाद भी गई...यहां जिनके पास बच्चे हैं, वह कौन सा खुशहाल  है, वह इससे भी ज्यादा मुश्किल में है।'

अंकल की आंखों के किनारे गीले हो गये हैं। उन्होंने नेपकिन से आंखें पोंछी, 'बेटा, मैं अभी आया..।' कहकर वह पब में बने बाथरूम में चले गये।

मैं दो दिनों का कह कर नजदीक के एक गांव में अपने किसी प्रशसंक के पास चला गया था। पर वहां मुझे चार दिन हो चले थे। अंकल का फोन आया, 'पुत्तर कब आयोगे? जल्दी आ जा...दिल नहीं लग रहा, कल तुम्हारी आंटी ने बहुत अपसैट किया मुझे...मेरी दुश्मन बनी हुई  है, जिंदगी में मुझे सपोर्ट तो क्या करना है, अपसैट करती है, पिछली बातों का बखेड़ा खड़ा करके बैठ गई, कहने लगी कि बच्चे तुमने घर से निकाले हैं, बताओ मैं क्या करूं...तुम उसे फोन करो।'

अंकल का दिल भर आया था। उन्होंने फोन काट दिया था। वह पब से बोल रहा था। मैंने घर वाले फोन से आंटी को फोन किया, उन्होंने मेरी कोई बात नहीं सुनी, कहने लगी, 'मुझे बुरी तरह डिप्रैशन हो गया है, यही इंसान जिम्मेदार है मेरी डिप्रैशन का, पब-क्लबों में चला रहता है। गुरुद्वारे जाने का कभी नाम नहीं लेता....कल से छोटा बहुत याद आ रहा है सैंडी...कल के दिन

घर से गया था...वापिस ही नहीं लौटा...पता ही नहीं कहां है, मैं कल सारा दिन गुरुद्वारे रही हूं, बस अब मैं इसके साथ नहीं रहूंगी, अलग-अलग हो जायेंगे हम, मेरी क्या जिंदगी है...कोई जिंदगी है मेरी? ओ हो...हो।'

आंटी की बात सुनकर मैंने अंकल को फोन किया, 'अंकल, आप भी अपनी थोड़ी जिम्मेदारी समझो, आंटी को हौंसला देने की जरूरत है...इगनोर करने की नहीं, तभी आप लोगों का समय गुजरेगा अंकल।'

'वो यूं ही फालतू शोर डाल रही है...तुम आ जाओ, मिलकर बात करते हैं।'

----------

मेरा दोस्त ठीक दस बजे मुझे अंकल के घर के आगे उतार कर अपनी शॉप पर चला गया। मेरे पास एक छोटा सा बैग है। रात अंकल को बताया था कि कल दोपहर से पहले आ जाऊंगा। मैंने घंटी बजाई। सोचता हूं, आंटी गुरुद्वारे गयी होंगी। अंकल दरवाजा खोलेंगे। इंतजार करके दूसरी बार घंटी बजाई। दरवाजा आंटी ने खोला। आंटी बगलों में बैसाखियां फसाये हुए 'हाय हाय' करती हुई आई। चेहरा उतरा हुआ था। ऐसा लग रहा था कि कल गिर गई होगी कहीं। इतनी जल्दी बैसाखियां कहां से?

'क्या हुआ आंटी? यह क्या है...हैं...?'

'क्या बताऊं...हाय...हाय...मैं तो बस अब खत्म हूं, बस अब मैं फिनिश हूं...आ जाओ अंदर तुम...मुझे हैल्थ इंस्पैक्टर चैक करने आयेगा...हाय मैं तो मर गई।'

'मैं बैग रख आऊं...मैं अभी आया।'

आगे अंकल खड़े थे। हाथ में कोई किताब है। अपने मुंह पर उंगली रखकर उन्होंने मुझे चुप रहने के लिए इशारा किया है। आंटी हाय हाय करती, बैसाखियां बगलों में दबाए अपने कमरे में चली गई हैं। अंकल धीमे सुर में बताने लगे, 'सुनो मेरी बात...तुम्हें एक नई बात बताता हूं मैं...तुम बिना फोन किये आ गये...तुम्हारी आंटी ने सोचा कि शायद हैल्थ क्लब का इंस्पैक्टर ही आ गया...आज इसे चैक करने हैल्थ क्लब के इंस्पैक्टर ने आना है। यह सरकार से विकलांग पैंशन लेती है। पाखंड करती है...जब इंस्पैक्टर देखकर वापिस चला जायेगा...फिर देखना कैसे झट से ठीक होती है, बैसाखियां उठाकर फेंक देगी स्टोर में। काका जी, यह तो यहां के आधे लोगों ने धंधा बना

लिया है। झूठ बोल-बोलकर पैंशन व भत्ते लेते जा रहे हैं सरकार से, तुम्हें और बताऊंगा...जब शाम को पब चलेंगे।'

सच्ची बात थी। हैल्थ इंस्पैक्टर के चले जाने के ठीक एक घंटे बाद आंटी ठीक हो गई। शाम हुई। हम पब को चलने वाले थे। अंकल कहने लगे, 'इधर आओ जरा, वो देखो, अपनी आंटी की बैसाखियां।'

आंटी ने स्टोर में अपनी बैसाखियां इंस्पैक्टर के दोबारा आने तक संभाल कर रख दी थीं।

# वाईन में व्हिस्की

उस रात मुझे नींद नहीं आई थी। पूरी रात सोचता रहा था। विलायत के भिन्न-भिन्न रंगों के बारे में कि कितनी कमबख्त है यह विलायत! यहां कोई किसी का सगा नहीं है। कहां गये हमारे रिश्ते-नाते, कहां गया हमारा स्वाभिमान? क्या हमने इन बेटियों-बहनों को परदेस में भटकने के लिए पैदा किया था? क्या पौंड की चमक-दमक के पीछे हमने सब कुछ दांव पर लगा दिया है? यह आप? बताती है कि मेरे जैसी अन्य लड़कियां भी यहां बहुत हैं, जिनके सिर पर न मायका...न ससुराल, न आगे...न पीछे...! क्या करें? कहां जाएं? क्या यही कुछ होता रहेगा? कब तक? यदि रुकेगा, तो कब और कैसे? क्या कभी हमें समझ आयेगी? यदि मैं इंडिया जाकर लोगों से इस बारे में बात करूंगा तो अवश्य वह मेरी बात को झूठ ही मानेंगे। न भेजो बेटियों को विलायत में भटकने को, इससे अच्छा है कि कुएं में धकेल दो...यदि भेजना नहीं छोड़ना है तो! इससे तो आधा पेट खाना अच्छा है। यह सब सोचता मैं सुबह चार बजे सो पाया था।

----------

'मैं तो हैरान ही हो गया, यहां यह सारा माहौल देखकर।' उसने नजदीक बैठे हुए पूछा था।

'क्यों? क्या माहौल देखकर?' वह बोली।

'लगता है कि यहां आधे से अधिक औरतों ने अपने पति छोड़ रखे हैं, या ऐसे कह लो कि आधे से अधिक आदमियों ने अपनी पत्नियां छोड़ी हुई हैं, क्यों मेरी बात सही नहीं?' मैंने अंदाजे से कहा था।

'हां, तुम ठीक कह रहे हो...पर आधे नहीं...ऐसी कोई बात नहीं है, तुम थोड़ा अधिक कह रहे हो, चलो पैंतीस परसैंट लगा लो, जिन मर्दों-औरतों के डाईवोर्स हुए हैं या दूसरे विवाह या फिर अब जो अलग-अलग हैं...मज़े करते हैं अपनी-अपनी गर्लफ्रैंडों के साथ...जो दिल चाहे करो, जब मन भर जाये नया फ्रैंड बनाओ और जब मर्जी...छुट्टियां बिताने जाओ।' उसने दलील के साथ कहा।

‘अच्छा, तुम ठीक ही कहती होगी।’ मुझे उसकी बात में वजन लगा था।

‘तुम सुनाओ कोई अच्छी सी बात...अपनी किसी गर्लफ्रेंड की बात...अपने प्यार की बात सुना...मुश्किल से मिले हो आज तुम।’

‘सुनाऊंगा...सुनाऊंगा, इतनी क्या जल्दी है तुमको?’

‘तुम बात को टाल रहे हो, हर बार बात टाल जाते हो, कोई और ही बात करते जाते हो, मैंने कहा अपने इश्क की बात सुनाओ...मुझे लगता है कि तुम अपनी पर्सनल लाइफ के बारे में मेरे साथ बात नहीं करना चाहते।’

‘अभी मिले कुछ घंटे ही हुए हैं...कल तक तुम्हारे पास हूं...फिर जल्दी किस बात की है...सुनाऊंगा तुम्हें सबकुछ बताऊंगा और तुमसे भी तुम्हारी जिंदगी के बारे में सुनूंगा, छोटी सी उम्र में तुम कितनी ज़हीन हो और अकेली हो...लगता है टूट चुकी हो सबसे, क्या बात है, तुम्हारे मायके वाले, ससुराल वाले...तुमसे इतनी नफरत क्यों करने लगे थे, बताओगी मुझे कुछ?’

‘तुम फिर वही बातें कर रहे हो...पहले अपनी लाइफ के बारे में बताओ...फिर बताऊंगी...मेरे ससुराल व मायके वालों को रोने बैठ गये हो।’

‘अच्छा शाम को बताऊंगा...अभी मेरा मूड हल्का-फुल्का नहीं है।’

‘क्या तुम व्हिस्की पीयोगे?’ बहुत है मेरे पास, मैं तुम्हारे साथ वाइन पीऊंगी...रैड वाइन।

‘आये-हाय...फिर तो मजा ही आ जायेगा बातें पूछने-पुछवाने का...तुम तो चाय से मुझे जलाकर मेरे इश्क के किस्से सुनना चाहती हो...बकबकी चाय...मेरे जितना कप...लफंडर सा कप...भारी...यहां घर-घर ऐसे कप हैं...यहां मैंने बहुत से ऐसे लफंडर कप देखे हैं।’

‘ऐसे-ऐसे लोग हैं...लफंडर से...कप जैसे...तुमने अभी यह नया लफ्ज़ लफंडर कहां से निकाला, मर जाओ तुम।’

वह हंस पड़ी थी, लफंडर शब्द से। मोह से ‘मरजाने’ गाली भी निकाल गई थी। आज विलायत में मेरा दिन सभी दिनों से सुहावना और रमणीय था। खत्म ही न हो यह दिन कभी।

जबसे विलायत आया हूं, रुक नहीं पाया कहीं भी। प्रशंसकों व दोस्तों के साथ कभी यहां कभी वहां। समारोह, रेडियो व टीवी के स्टूडियोज़ में कार्यक्रम, सेमीनार, विवाह-पार्टियां, महफिलें। थका पड़ा है शरीर। देर से सोता हूं और देर से जागता हूं। खाना भी देर से। भूख ही नहीं लगती कई बार। लोग मिलते

हैं, बहुत रूखी और घिसी-पिटी बातें करते हैं। एक दूसरे की निंदा-चुगली, ईर्ष्या-जलन, अपनी तारीफ। पंजाब की याद भी आ रही है और पंजाब से प्यार भी हो रहा है। इंडिया की कमी और अवगुण को कोसते हैं। क्या करूं, किसकी सुनूं, किसकी न? सबकी सुनता हूं। थक जाता हूं। मीठी-प्यारी व मोह से भरी हुई 'अपनी बातें' 'पूछने-बताने' वाला कोई नहीं मिला इतने महीने। सुनाने वालों का यहां कोई लेखा-जोखा नहीं है। मेलजोल बेशक नया है। पहली बार मिले हैं। यह मुझे लंबे समय से पढ़ती आ रही है। अपने कमरे में मेरी व अन्य लेखकों की किताबें भी रखी हुई हैं। मेरे छपने वाले कॉलम भी पढ़ती है। बताती है कि एक बार उसने हमारे घर इंडिया फोन किया था घर वाले फोन पर...मेरी मां ने फोन उठाया था और कहा था कि लड़की, आगे से हमारे घर फोन न करना।'

मैं उसके पास अपनी मां की तारीफें करता हूं। वह नाक सिकोड़ती है और बात को टालती है। बात-बात पर मुझे 'मरजाने' जैसी गाली देती है तो थोड़ा सा मुस्कुरा भी पड़ती है। मुझे उसकी यह अदा अच्छी लगती है।

कहती है–'तू भी बना फिरता है बड़ा राइटर...मेरी कविताएं पढ़ना...फिर देखना...और मेरी किताब छपवा दे...ना छपवाई तो देखना फिर? मेरी कविताएं ले जा इंडिया...ओ? करदे मेरा यह काम...तू ही करेगा मेरा यह काम।'

'अगर न छपवाऊं फिर?'

'फिर...नहीं तो न सही...अच्छा...ओके...बाय...बाय...मुझे मत बुलाना...मैं खुद छपवा लूंगी किसी और को कह कर, मुझे आज टाइड लगता है तू...रैस्ट कर ले, करनी है रैस्ट तुमने?'

'साथ ही नाराज हो जाती हो, साथ ही बाय बाय भी कहती जाती हो, और रैस्ट करने को भी कहती हो, इतना कुछ इकट्ठा? तुम्हारा भी कोई भेद नहीं, ईश्वरीय रूह लगती है तू।'

'अच्छा बात सुनो...मेरे बारे में लिखोगे? लिख देना कुछ...मेरा नाम मत लिखना...यह तुम्हारा इम्तिहान हैं...सुनते हो?'

क्यों नहीं लिखूं तुम्हारा नाम? लिखूंगा सब कुछ लिखूंगा...तुम फिक्र मत करो...नाम लिखकर मैंने तुमसे क्या...!

'हां.. हां...बोल-बोल...बात क्यों काट दी, बता...क्या...मुझसे? क्या मुझसे...बताओ अब?'

'हां क्या लिखना तुम्हारा नाम...मैं पागल हूं क्या?'

हम कितनी देर तक बेवकूफाना बातें करते रहे। लगता नहीं कि मैं इसे पहली बार मिला हूं। लगता है कि बार-बार मिला हूं। मिलनसार, जल्दी घुल-मिल जाने वाली, उत्तेजित, सुंदर व छोटी उम्र में ही अकेलापन बिताने लगी है। साले कमीने होंगे मां-बाप और ससुराल वाले भी। अकेली को छोड़ गये। वह बताती है–'इंडिया से आये हो तुम...विलायत के बारे में तुम्हें क्या पता, मेरे जैसी बहुत सी हैं...न घर की हैं न घाट की। तुम्हें सच बताती हूं। दोस्तों के साथ दिन काटे। दोस्त भी मतलबी निकलते हैं ज्यादातर और फिर नया फ्रैंड...लड़कियां भी कम नहीं...अच्छे-अच्छे लड़कों को बर्बाद कर दिया यहां और रद्दी किस्म के लड़कों ने कोमल कलियों सी लड़कियां मिट्टी कर दीं।'

वह ऐसे बातें बताती है, मुझे समझ नहीं आ रहा। मैं कांप कर रह जाता हूं उसकी बातें सुन-सुनकर। वह कहती है, 'मैं एक बड़ा नावल लिखूंगी...देखना तू मेरा नावल।'

मैं कहता हूं–'तुम यह गालियां देने वाला काम बुरा करती हो, इतनी समझदार हो के, और यह पीने पिलाने वाला काम भी, लगता है तुम भी बिगड़े हुए लड़कों में काफी रहकर आई हो, गुस्सा मत करना मेरी बात का...ओके?'

'गुस्सा किस बात का...सच कहते हो तुम।'

वह सबको जानती है, पंजाब के सभी कलमकारों को। कलाकारों और पत्रकारों को बहुत पढ़ती है। जब से मैं विलायत आया हूं, उस दिन से मेरा फोन नंबर यहां की सभी अखबारों में छपा है, मेरे कॉलमों के नीचे। यह तब से हर रोज फोन करती है, बिना रुके हुए। कई बार व्यस्त होता हूं तो कह देता हूं कि रुक कर करना जरा। उसे पता है कि मैं फोन नहीं करूंगा, विजिटर आया हूं। विजिटर को फोन काफी महंगा पड़ता है। बहुत कम मिनट मुफ्त में मिलते हैं। फिर यहां कई लोग फोन पर अपनी कहानियां और कविताएं सुना कर अपना गुबार निकालने लगते हैं। इसके फोन में डेढ़ हजार मिनट फ्री है। यही फोन करती है और पूछती है–'हो गये फ्री...अब तो बात कर लो?' एक दिन, जिस दिन इसने मुझे पहली बार कहा था–अब तो बात कर ले...मरजानेयां। उस दिन मरजाने वाली गाली निकाल कर मेरा दिल लूट लिया था। इतनी

फारवर्ड लड़की! अनजान और अनदेखे को फोन पर मरजाना कहना इतने अपनेपन के साथ! जिस दिन उसने मुझे मेरे दोस्त के घर लेने आना था, मैंने स्वाभाविक ही पूछा था कि तुम्हारे साथ कौन आयेगा? कहने लगी–'कोई नहीं, सिर्फ मैं ही हूं, और कौन है मेरा यहां? मेरी तो कार भी टू सीट है...और मुझसे उल्टे-सीधे सवाल मत किया करो। '

उसने पूछा, 'एक बार तुमने अपने लेख में लिखा था कि मांह की दाल तुम्हारी फेवरिट है, आज बनाई है मैंने...रोस्ट चिकन भी है।'

आज मैंने टब में गर्म पानी भरा। उसमें जाकर लेट गया। साबुन मलकर रगड़-रगड़ कर नहाया। कितनी ही देर यूं पड़ा रहा टब में। हड्डियां और पैर खुल गये हों मानो। हलका फुलका सा होकर टब से निकला। वह कितनी बार आई थी, दरवाजे पर खड़ी होकर बोली–'आ जाओ अब बाहर, अंदर बैठ गये हो क्या डेरा लगा कर? क्या कर रहे हो? अब जल्दी से बाहर आ जाओ।'

जब मैं अपने रूम में आकर नाईट-सूट पहनने लगा तो पर्दा उठाकर देखा, बाहर अंधेरा उतर आया था। बल्ब और बत्तियां अंधेरे का स्वागत कर रही थीं। नीचे गया। वह रसोई में व्यस्त थी।

'क्या कर रहे थे इतना समय?'

'करना क्या था...? टब में पड़ा रहा...मजे से...गुनगुना सा गर्म पानी, बड़ा आनंद आया आज, नहीं तो लोगों के घरों में जल्दी-जल्दी नहाया करता था, परिवार और दूसरे सदस्यों ने भी बाथरूम का इस्तेमाल करना होता था...'

'डाल कर रखे हैं...वह देख, मेरी वाईन...तुम्हारी व्हिस्की, मैं चिकन निकाल लाऊं, बन गया है।'

'एक-एक रोटी भी रख लो साथ में...आज जल्दी सोना चाहता हूं, कितने दिनों से नींद पूरी नहीं हुई। '

'अच्छा...अच्छा? आज नींद आ रही है...मेरे घर आकर, अच्छा...तुम सो जाओ, खा लो अब...सो जाओ।'

'ओ हो हो...चन्नो...गुस्सा किस बात का?'

चन्नो कहने से उसका रूठना पल में ही उड़ गया।

रोस्टेड चिकन में तो वाकई बहुत स्वाद था। मैंने आधे घंटे में व्हिस्की का पैग खत्म किया। उसने वाईन का। बातों से ही फुर्सत नहीं मिली आज। सारा चिकन खत्म हो गया। दोनों के लिए अपना-अपना पैग डाल लाई।

'कमीने...हैं यहां कप सरीखे इंसान...लफंडर, दिल करता है दीवार में मारकर तोड़ दूं लफंडर से कप...मेरे घर तुम्हें कोई लफंडर कप नहीं दिखेगा...उठकर देख लो बेशक।' वह एकदम तल्ख़ होकर बोली।

'ओए...ओए तुम ऐसी भी गालियां निकाल लेती हो? बहन-मां की गालियां मत निकाला करो...इतनी गालियां?'

'अपने फ्रेंड से सीखी हैं भैण चो...से, धोखा दे दिया, कैनेडा भाग गया। पहले बिलकुल भी नहीं निकालती थी, न ही पीती थी, भजन-बंदगी करती थी सुबह-शाम...अब कभी नहीं की।'

'कौन था तुम्हारा फ्रेंड?'

'फिर बताऊंगी...और बताऊं मैं तुम्हें, अखबार में न्यूज़ थी...पढ़कर मैं लेखकों के कार्यक्रम में चली गई, बहुत भीड़ थी...शाम का कार्यक्रम था, पहली बार गई थी मैं तो...मैंने कविता पढ़ी...सबने सराहना की, जब कार्यक्रम समाप्त हुआ तो सब मेरे आस-पास...कोई कुछ पूछे...कोई कुछ, कोई फोन नंबर मांगे तो कोई ईमेल, पापा की उम्र का एक आदमी...सिर पर बहुत ही हाथ फेर रहा था, मैंने पापा समझ कर सैल फोन नंबर दे दिया...मरजाने का फेस बुक भी बना हुआ है, चैट भी करता है लोगों से, कई लड़कियां है उसकी फ्रेंड लिस्ट में...उस दिन भी उसने फ्रेंड रिक्वैस्ट भेजी मेरे फेस बुक पर...फिर लगा फोन और मैसेज करने, न दिन देखता था और न रात, यानि दो घूंट पीकर रोज फोन करने लगा। मैं समझ गई...साला मेरे गले पड़ गया लगता है मुझे तो...मैंने फोन सुनना बंद कर दिया, मरजाना मैसेज करने लगा मेरी वोइस मेल पर...कभी बोलता था मेरा दिल नहीं लगता है, मैं तुझे बहुत मिस करता हूं।'

'चलो...पहले वाईन उठाओ अपनी और खत्म करो फिर अगली बात बताऊंगी।'

'यह लो...तुम भी करो खत्म।'

'उस बेटी के यार ने पीछा न छोड़ा मेरा, संडे की शाम को एक दिन आ गया, लाल रंग की कार थी उसकी इंपोर्टेड कार, मैंने कहा, अंकल आई डोंट लाईक...और तुम्हें मेरा पता कहां से मिला? आप मेरे साथ रॉंग टॉक करते हो फोन पर, अंकल मैं आपकी बेटी जैसी हूं...कुछ तो सोचो।'

'कौन सा लेखक है...बता मुझे, उस कमीने के बारे में।'

'तुम क्या करोगे, तुमने उसके घर क्या रिश्ता करना है? हां सच...तुम उसे गालियां निकालो?'

'तुमने मलवई बोली कहां से सीखी है, बताओ मुझे।'

'पहले यह सुन लो...मुझे कहता था, माफ करना मुझे...मैंने तुमसे एक बात करनी है, क्या मैं तुम्हारे घर के अंदर आ सकता हूं? मैं अंदर ले गई...क्या खा जायेगा मुझे? बैठ गया...पीकर आया लगता था...मैंने फिर कहा कि अंकल मैं आपकी बेटी जैसी हूं...आपने मेरे साथ फोन पर कैसे बात की, यह गलत है। मुझे आगे से कहता है, मेरी बेटी ने तो खुद मेरी उम्र का फ्रेंड रखा हुआ है...तुम नहीं बना सकती मुझे अपना फ्रेंड? हाय...हाय...मैं तो सोफे पर धंसती गई। इतना बेशर्म इंसान? कहने लगा कि तुम क्यों शरमा रही...मैंने कहा कुत्ते तुम लेखक हो पंजाबी भाषा के, कमीने की दाढ़ी बंधी हुई थी, यदि खुली होती हो। मैं उसके बाल नोच लेती। वह सोफे से उठ खड़ा हुआ, मैंने कहा यहीं खड़ा रह कमीने...अब जाना मत, यदि तुम्हारी बेटी वैसी...है पर मैं तो वैसी नहीं, तुम मेरे घर आये कैसे? भागकर कार में जा बैठा और तभी ही भाग निकला...सुनते हो लेखक की बातें, तुम्हें और बताऊं?'

'हद हो गई...हद हो गई...कौन था वह? बता तो दे...अपनी बहन का यार, कौन था?'

'डोंट वरी...डोंट वरी, पैनिक मत हो, धैर्य रखो...तुम उसे फोन करो, जितनी मर्जी उतनी गालियां निकालो, पहले यह तो खत्म करो, लो फिर हम फिनिश करते हैं।'

'क्या फिनिश?'

'भौंको मत...पीयो इसे।'

'न...न...मैंने तेरी वाईन में व्हिस्की डालनी है।'

'बकवास मत करो मरजाने, स्टुपिड।'

'बताओ...कौन था वह कमीना...।'

उसने अपने सैल फोन पर स्टार वगैहरा लगाकर उसका फोन लगाया, ताकि उसका नंबर उसके फोन पर न जाये। रिंग जाती रही। बड़ी धीमी सी हैलो सुनी, 'हां जी कौन?'

'बताऊंगा...बताऊंगा...बेसब्रा मत हो, लोगों की बेटियों से आशिकी करता है, भैण के खस्म, शर्म नहीं आती, ना उम्र, ना हैसियत'

'अच्छा...अच्छा...तुम उस गश्ती के दोस्त बोल रहे हो, समझ गया मैं...बता क्या बात है हराम के?'

'ओ अंकल, बेटी के खस्म...तू अपनी बेटी के घर आया था, अब आना किसी दिन।'

मैं उसको गालियां निकाल रहा था वह मेरे साथ कंधे पर और करीब-करीब होती जा रही थी और कभी-कभी खुशी में कंधे पर उछलने भी लगती थी। जब मैं उस आदमी को गालियों का भंडार दे बैठा तो वह खुशी में पागल होकर चीखने लगी, 'बहुत अच्छा हुआ आज, बहुत अच्छा हुआ...तुम्हारा थैंक्स, अब तुम वाईन में व्हिस्की डालने के हकदार हो गये हो।'

'हां...हां...यह उठाओ...।'

'अब मैं भी पीऊंगी तेरी व्हिस्की में वाईन...ले यह। वाईन व्हिस्की में चली गयी थी।'

# स्वर्गां नू जाण हड्डियां......

'किसी के पेट में दर्द होता है, तो होता रहे, मैं तो सभी से कहता हूं कि मीतो मेरी गर्लफ्रैंड है...मेरी गर्लफ्रैंड है मीतो, मैंने तो सबके सामने रखी है, किसी साले को तकलीफ होती है तो होती रहे, मुझे किसी की परवाह नहीं...सब को पता है घुद्दे की गर्लफ्रैंड के बारे में, किसको नहीं पता? मेरी बेटियों-बेटों, दोहतों, पोतियों सभी को, यहां विलायत में भी और उधर इंडिया में भी पूरे गांव को पता...कई वर्षों पहले की बात है, एक दिन मेरा बड़ा बेटा कुछ ज्यादा ही खुश था, मुझे कोने में ले जाकर कहने लगा, 'डैड डांट वरी...आपकी पर्सनल लाईफ है, मुझे मालूम है मीतो आंटी आपकी गर्लफ्रैंड हैं, आप मेरे से शर्माते रहे हो, मैं महसूस करता था कि डैड ने मुझसे छिपा रखा है, डैड...यहां बेटियां-बेटे भी तो मां-बाप से कुछ नहीं छिपाते...अपने अपने फ्रैंडस के बारे में बता ही देते हैं।'

घुद्दा चाचा आज बहुत ही खुल गया था। उसके अंदर जैसे गांठें बंधी पड़ी थी। किससे करें वो बातें? वक्त ही किसके पास है विलायत में, किसी की सुनने के लिए? सच ही, यहां हर कोई पेट को बांध कर फिरता है। हर इंसान गले तक भरा पड़ा है। मुझे विलायत में बहुत से ऐसे लोग मिले, जब वह उधड़ते हैं तो उधड़ते ही जाते हैं। बातें करते-करते उनके मुंह से झाग गिरने लगती है, पता नहीं क्यों, या फिर विलायत की आब-ओ-हवा के कारण या किसी अन्य कारण से बहुत से लोगों के होंठ  बात करते समय हलकी सी झाग छोड़ने लगते हैं।

मैंने देखा, चाचा जब दिन में बात करते हैं, तब उनके होंठों से झाग निकलती है। अब तो शराब ने चाचा के होंठों की झाग सोख ली थी। चाचा सुरूर में था।

मेरे से उन्होंने कुछ नहीं छिपाया। बल्कि मैं तो उसके सभी बेटी-बेटों से भी बहुत छोटा हूं। उसके दोहतों-पोतों की उम्र का।

चाचा का छोटा नाम घुद्दा है। जवानी में चाचा जब कबड्डी खेलता था तो

कबड्डी के मैदानों में 'घुद्दा-घुद्दा' होती थी, 'वह आ गया बई घुद्दा...वह आ गया घुद्दा।'

घुद्दा चाचा अपने समय को याद कर रहा था, कबड्डी के उस सुनहरे समय को! बात करता-करता अतीत में खोते हुए चाचा का मन भर आता है।

मुझे सप्ताह भर हो गया है उनके पास आये हुए। परसों को मुझे वापिस चले जाना है उनके घर से। चाचा कहता है, 'तू मेरा नावल लिख दे, क्या लेगा लिखने का तू? नकद हिसाब,अभी बताओ मुझे कितने पौंड? जितने कहेगा उतने ही दूंगा...पर लिख मेरा नावल...अभी दूं मैं तुम्हें, बोलो कितने पौंड दूं? लिखो मेरा नावल...मेरी स्टोरी।'

'नहीं चाचा, मुफ्त में लिख दूंगा तुम्हारा नावल पर लिखूंगा अपनी मर्जी से, जैसे तुम कहोगे...हू-ब-हू वैसे नहीं लिखूंगा, तुम्हारे तो पोतड़े फलोरूंगा मैं तो।'

मैं हंसता हूं। घुद्दा चाचा भी हंस पड़ते हैं। उन्होंने गिलास का आखिरी घूंट खत्म किया। मैं खाली हुआ पानी का जग भर लाया।

'लिख लेना...लिख लेना...जैसे कंवल लिखता होता है...ढूंडीके वाला कंवल...बड़े नावल पढ़े हैं मैंने उसके, जसवंत कंवल के...अगर तुम नहीं लिखोगे तो मैं कंवल से लिखवाऊंगा, जब मैं इंडिया आऊंगा तो कंवल के गांव जाऊंगा...उसे कहूंगा बई तुम लिखो मेरा नावल, तेरी चाची और मेरे प्रेम की कहानी।'

मैं आपको यह बता दूं कि मैं उन्हें चाचा किस हिसाब से कहता हूं। मेरे जिस मित्र ने मुझे इनके साथ मिलाया, उसके यह दूर के चाचा लगते थे। मित्र को चाचा कहते देखकर मैं भी इन्हें चाचा कहने लगा था।

बहुत बड़ा घर है चाचा घुद्दा का। पर रहते अकेले ही हैं। बेटी-बेटे दूर हैं। कई घंटे की दूरी पर, तकरीबन दो घंटे की दूरी पर। तब मिलते हैं जब चाचा के किसी दोहते-पोते का जन्मदिन होता है या रिश्तेदारी में कोई सुख-दुख की रस्म हो। चाचा मस्त है। बिलकुल भी फिक्र नहीं। कहते हैं, 'आने वाले की खुशी नहीं और जाने वाले का गम नहीं।'

विलायत में इतना बड़ा घर बहुत ही कम लोगों के पास है, जो बहुत पहले यहां आये थे। हर किसी के पास इतना बड़ा और शानदार घर नहीं। चाचा ने बहुत मेहनत की और कमाया भी बहुत। अब पैंशन मिलती है। कोई कमी नहीं, चाची समय से पहले ही चल बसी।

चाची के गुजर जाने का चाचा को बिलकुल भी गम नहीं था। वह बताता है, 'सभी को मोह देती-लेती रही है, अच्छे से गई है हँसती-खेलती...हरे भरे परिवार में से, उसे कोई भी कमी नहीं रही। कहती थी गांव में कोठी बना दो, मैंने बना दी, जब-जब कोई गहना लेना होता था, मैं ले देता, महंगे से महंगा सूट लेती थी, रिश्तेदारी में जो मर्जी लो-दो...यह उसका काम था, एक बार कहते सुना कि पेरिस बहुत सुंदर है, वहां भी घुमा लाया। एक बार कहा कि बड़ा घर लेना है, वह भी ले दिया...देखो कितना बड़ा घर है, परंतु रहना नसीब नहीं हुआ इस घर में...तीन साल ही रही।'

मैंने पूछा 'चाचा डर नहीं लगता, इतना बड़ा घर...अकेले रहते हो, साफ-सफाई...कितना मुश्किल है समय गुजारना?'

'डर किस बात का...पैग लगाता हूं मौज से...खा-पीकर खर्राटे मारता हूं। फोन बंद करके सोता हूं...मर्जी से उठता हूं, साफ-सफाई किस बात की? जब यहां गंदगी ही नहीं फैलती...कई-कई कमरे तो कई महीनों बाद खोलता हूं और झाड़-पोंछ कर फिर से बंद कर देता हूं, देखो कैसे मेरा घर भरा-भरा है, कोई हिसाब-किताब ही नहीं, बर्तन भी बहुत पड़े हैं। महंगी-से-महंगी क्राकरी, कई तरह के बिस्तर व अन्य कपड़े।'

मैं अकसर देखता हूं कि अपनी गांव वाली गर्लफ्रैंड के बारे में बात करते-करते चाचा की आंखों में चमक सी आ जाती थी। उसके होंठों पर झाग की हल्की सी बूंदें बढ़ जाती थी। बात करते-करते शब्द अटकते हुए से लगते थे। जैसे वह किसी चाव या उत्साह में आ जाते थे। मैं चाहता हूं कि चाचा से उसकी इंडिया वाली फ्रैंड के बारे में अधिक-से-अधिक बातें सुनूं।

मैं पूछता हूं, 'कब से जानती है तुम्हें, चाची के गुज़र जाने के बाद से या पहले से?'

'यह भी तुम लिखोगे? लिखना-लिखना...बेशक लिखना...तुम्हें बताता हूं मैं...बेशक मैं जट्ट हूं और वह निचली जाति से है, बेशक हो...मुझे क्या? मैं तो अपने गुरुओं का कहना मानता हूं, मैं जाति-पाति में बिलकुल भी यकीन नहीं करता। तुम्हें बताऊं मैं...यह मेरी कबड्डी पर मर गई, मेरी शान और मेरे कद-बुत्त पर। यह मुझे बहुत लंबे समय से जानती है। हमारे यहां यह तब काम करती थी, बेबे ने रखी थी। बेबे कहती थी कि यह बहुत अच्छी लड़की

है...पर सच बताऊं? मेरी उससे तब फ्रैंडशिप नहीं थी। यह तो तब हुई जब मैं चौदह वर्ष का बनवास काटकर और पक्का होकर विलायत से वापिस गया। यह वैसे-की-वैसे ही थी, जैसी छोड़ गया था। मैं शादी करवाने गया था तब। चार महीने रहा। तब एक दिन आवाज़ उससे जा मिली। तंग तो मैं भी था, यहां से सुंदर-सुंदर गोरियों के बीच में से गया था। एक दिन उसने समां बांध दिया। फिर गोरियों की क्या बिसात रबड़ की गुड़ियां जैसी, इसकी तो बात ही कुछ और थी। तब तो किसी को भी पता नहीं चला। शादी करवाकर मैं वापिस आ गया। फिर जब तेरी चाची को लेने गया छह महीने बाद...तब भी उसके साथ...घर में सभी को पता चल गया। तेरी चाची को तो चौथे साल जाकर पता चला। एक दिन फोन करते पकड़ा गया मैं। तेरी चाची सारी उम्र रोती रही कि कुतिया...मेरी हड्डियों में आकर बैठ गई, बेड़ा गर्क हो जाए गरकनी का। तेरी चाची मुझे हमेशा कहती रही, 'मेरे में क्या कमी थी कि तुम गंदगी में मुंह मारते रहे, मुझे तुम्हारा यही दुख मार गया। कौन सी औरत आदमी को किसी दूसरी के पास जाता देखकर सब्र करे...। परंतु यार मैं नहीं हटा।'

मैं कहना चाहता था कि चाचा उस दिन तो कहना चाहते थे कि हंसती-खेलती गई है अब असली बात बताई है मुझे, या फिर अपने दिल को झूठी तसल्लियां देने के लिए कह रहे थे उस दिन। यह बात कहता-कहता मैं रह गया। चाची को याद कर चाचा रो पड़ा था। मैं बात का विषय बदल रहा था परंतु चाचा की सुईं वहीं ही अटक गई थी। बात को खत्म करने के लिए वाशरूम जाने का बहाना बनाता हूं। मेरे वापिस आने पर चाचा मीट में कड़छी चलाने के लिए उठ गये। मैं भी पीछे किचन में चला जाता हूं।

'बड़े साल हो गये हैं...मेरे यूएसए वाले भाई ने एक दिन पैग लगाकर मुझे फोन किया। कहने लगा भाई यह बात ठीक नहीं, सभी ओर बदनामी हो रही है, अब तो तुम समझदार हो गये हो (विलायत में बुजुर्ग को 'स्याणा' होना कहते हैं), अब तो हट जाओ। मैंने साफ कह दिया कि यही बात कहनी थी तो आगे से मुझे फोन मत करना। फिर कहता नीची जाति है। मैंने जवाब दिया कि मेरे लिए तो वह देवी है...तुम्हारे लिए होगी नीच जाति की...और फोन कट गया। आज तक बात नहीं हुई हमारी। यार वह कौन होता है मेरी फ्रैंड के बारे में ऐसे कहने वाला। बेशक भाई ही है, मैंने तुझे कहा है कि भई हमारे

लिए जाति-गोत्र नहीं...हमारे जट्टों ने गुरुओं की बाणी' पर अमल ही कब किया है। उन्होंने तो जाति-गोत्र खत्म कीं थी और इन्होंने बना दीं। कोई इनसे पूछे भई यह मजहब शब्द बनाया था...धर्म...और यह इसका उलटा ही अर्थ निकालते हैं। सुनो बात, उसके बच्चे जब मुझे डैड कहते हैं तो फिर पीछे क्या रह गया? उसके दोनों बच्चे मैंने पढ़ाये, एक दुबई है और दूसरा पेरिस में। सैट कर दिया, मजे कर रहे हैं।'

दूसरे दिन चाचा फिर खिला हुआ था। आज मैं कुछ घंटों की छुट्टी लेकर एक दोस्त के साथ आगे उसके दोस्त के घर चाय पर गया था। जब मैं आया तो चाचा ठीक समय पर ही पैग लगाये बैठा था। कहने लगा, 'तुम तो कल-परसों चले जाओगे, मैंने सोचा भतीजे से बात कर लूं ज़रा मूड सैट हो जायेगा। और सुनो भतीजे, तुमने मुझे तूंबी सुनाई थी और मैं तुम्हें आज गाना सुनाऊंगा...मुझे सुर में हो लेने दो ज़रा।'

जिंद यार दी बुक्कल विच निकले
स्वरगां नू जाण हड्डियां
नीं जिंदे मेरिये
ओ जिंद मीतो दी बुक्कल विच निकले
ते स्वरगां नू जाण हड्डियां...

चाचा सुरीली आवाज में गा रहे थे और मुझे बहुत अच्छा लग रहा था। मैं तो चाचा की आवाज़ सुनकर हैरान ही रह गया। कुदरती सुर में चाचा की आवाज़ थी।

चाचा को इंडिया जाने की जल्दी मची हुई थी। मेरे इंडिया पहुंचने के दस दिन बाद चाचा ने भी पहुंचना था। तय हुआ था कि मैं चाचा के पास उसके गांव जाऊंगा। रौणक लगायेंगे। चाचा कहता था, 'फिर मैं भी तेरे गांव आऊंगा। साथ में तेरी चाची भी आयेगी। तुम अपने घरवालों को मत बताना कि यह चाचा की गर्लफ्रैंड है। कहना चाची-चाचा आये हैं। तेरी चाची तुझे मिलकर बहुत खुश होगी। तुम्हारे जैसे खुश दिल इंसान उसे बहुत अच्छे लगते हैं।' चाची से उन्होंने मेरे साथ चार-पांच बार बात भी करवाई थी।

चाचा ने इंडिया आने से दो दिन पहले फोन किया था, 'कोई चीज़ चाहिए तो बता दो, ले आऊंगा।'

चाचा गांव आ गये, हंसते-खेलते...बागो-बाग। मैंने उन्हें गांव मिलने

जाना था। उन्हें आये हुए चार दिन हो गये थे। रोज शाम को पैग लगाकर फोन पर बात करके खुश होते।

एक रात उन्होंने कुछ अधिक शराब पी ली। रोटी खाकर ठीक-ठाक सोये। सुबह नहीं उठ पाये। उस दिन जब अल-सुबह चाचा के फोन से फोन आया तो आगे से चाची रो रही थी। विलायत में रहने वाले चाचा के बच्चों को सूचित कर दिया गया था। वह आ रहे थे। मेरा मन बहुत खराब हुआ। टैंशन वाली एक की बजाय दो गोलियां निगल कर मैंने चाचा के गांव जाने वाली बस पकड़ ली। जब मैं पहुंचा तो उसके शव को शव गृह में रखने चले थे। अभी पांच दिन लगने थे दाह-संस्कार को।

शव संभालकर जब घर वापिस आये तो चाची ने मुझे पहचान लिया। उसने टीवी पर मुझे कई बार देखा हुआ था। वह मुझे गले लगाकर बहुत रोई, जबकि मैं तो उसे पहली बार मिला था। 'तुम्हारा चाचा ईश्वरीय रूह था...मुझ जैसी डूबती हुई को तार गया...कहां चला गया तेरा चाचा।' चाची के इन बोलों ने मेरे कलेज़े को छलनी-छलनी कर दिया।

जिस दिन चाचा की चिता जल रही थी, श्मशान घाट में खड़े हुए मुझे उनके साथ विलायत में बिताये हुए दिन याद आ रहे थे व एक शाम उनके गाये यह बोल भीः

जिंद यार दी बुक्कल विच निकले...
स्वरगां नू जाण हड्डियां...

# विलायती अंकल-देसी धक्के

बोघा अंकल हर साल विदेश से पंजाब आते हैं। उन्हें वतन वापिस आने का बहुत खिंचाव होता है। तीन-चार महीनों में ही फिर विदेश वापिस जाने का दिल करने लगता है। बा-मुश्किल छः महीने गांव में रहते हैं। गांव में बढ़िया रौनक लगी रहती है। आस-पास व गांव के लोगों में 'बोघा वलैतिया' हंसी-ठठे व मज़ाक का पात्र बना रहता है। उसके दोस्त व नजदीकी रिश्तेदार भी उसे, उसके मुंह पर कहते हैं, 'क्यों ऐसे धक्के खाते फिरते हो, एक जगह टिककर नहीं बैठ सकते, या इधर रहो या उधर। ना तुम्हें यहां चैन है और न वहां चैन।' पर वह आगे से विदेशी अंग्रेजी में कहते, 'साले स्टूपिड इंडियन...मेरी लाईफ में अन-नसैसरी इंटरफियर करते हैं...बुलशिट...! इन लोगों को पूरी उम्र अक्ल नहीं आनी...ना मौत आनी है, ओ माई गॉड...।'

वह दिन भर बात-बात में मौत शब्द का इस्तेमाल बहुत बार करता है। बोघे अंकल का पड़ोसी था एक गोरा, नाम था उसका जॉर्ज। अकेला रहता था अंकल की तरह। कभी-कभी दोनों, अपने-अपने घरों से गिलास में रैड-वाईन डालकर लाते और घर के पिछले बगीचे में बैठकर घूंट भरते रहते, अपना दुख-सुख करते। एक शाम जॉर्ज अंकल के साथ बैठा हंसता और बातचीत करता रहा था। जार्ज अंकल को सुबह उठना नसीब नहीं हुआ। उस दिन से अंकल भी डरने लग गये कि कहीं जॉर्ज की तरह वह भी सोया हुआ न रह जाये! यदि वह सोया रह गया तो पता नहीं कितने दिन अंदर ही पड़ा रहेगा, किसी को भी नहीं पता चलेगा। अंकल बताते थे, 'बहुत सालों की बात है...साऊथहाल में घर के अंदर पड़े-पड़े एक आदमी सोया ही रह गया था, पूरा वीक कमरे में पड़ा रहा, जब पड़ोसियों को स्मैल आई तो उन्होंने पुलिस को कॉल की, ओ माई गॉड...'

अंकल को ऐसी चिंता दिन-रात सताने लगी। एक दिन वह मनोचिकित्सक विशेषज्ञ डाक्टर के पास गया। उसने एक गोली दी। अंकल के दिल से मर जाने का फिक्र थोड़ा सा कम हुआ परंतु बात-बात पर मौत-मौत करते रहना

कम नहीं हुआ। तब मैं भी अंकल के पास विदेश रुका हुआ था। एक शाम, अंकल का जन्म दिन मनाने के लिए दूर-दूर से उनकी बेटियां-बेटे व दोहते-पोते आये, परंतु अंकल दो पैग लगाकर मौत की बातें करने लगे। यही कहते रहे, 'मुझे सपने में मेरा फ्रैंड जॉर्ज आवाज लगाता है...चला जाऊंगा मैं भी जॉर्ज के पास जल्दी।'

यह सुनकर अंकल की बड़ी बेटी सैमी बोली, 'डैड, प्लीज़...आप अपनी बात का टॉपिक बदलोगे या नहीं?'

बेटी की डांट सुनकर वह एक घंटा चुप रहे। तब तक सभी खाना खाकर अपने घरों को वापिस चले गये। अंकल के दोहते-पोतों ने जब उन्हें तोहफे भेंट किये तो वह सुबकने लगे। लड़की ने फिर से घूरा, 'डैड,प्लीज़, हम सभी तीन सौ किलोमीटर से अपने-अपने काम छोड़कर, आपका बर्थ डे मनाने आये हैं न कि डैथ डे...ओके?' बेटी की बात सुनकर अंकल कुछ संभल से गये।

मैं जितनी बार भी विदेश गया उतनी बार अंकल के पास रहा। विदेश में मेरे अंकल-आंटियां काफी हैं। सभी के तरह-तरह के किरदार हैं। मैंने पहले भी लिखा है कि उनके दिलों की कोई विरला ही है जो जानता...वही, जिसके पास वह अपना दुखड़ा रोये! या वह जाने, जिसके पास विदेश में ऐसे अनेकों लोगों का दुखड़ा सुनने के लिए खुला वक्त हो। नहीं है किसी के पास इतना खुला वक्त! विदेश में चलते-फिरते ऐसे अंकल-आंटियों के तरह-तरह के दुख सुनकर मैं पसीज जाता और उदास होकर अपने कमरे में जाकर लेट जाता। उनके दुखों में बीत रहे परदेसी जीवन के बारे में सोचने लगा। कैसा जीवन है! कैसी विडंबना है। कितने भरे पड़े हैं यह लोग! अंकल बोघे को छोटी-मोटी कविता लिखने की आदत भी है। यह आदत उन्हें तब पड़ी जब ढाडी दया सिंह दिलबर विदेश अपने जत्थे के साथ गाने आया था। बोघा अंकल ने गुरु घरों में उन्हें सुना और दिलबर की दिलकश आवाज और प्रभावशाली भाषण उनके अंदर गहरे तक घर कर गया। जब दिलबर का जत्था उस समय की बात गाता, जब रानी जिंदा इधर-उधर भटकती फिरती है। उसका दर्द सुनकर आकाश में से एक तारा टूटकर गिर जाता है। तारे को गिरता देखकर रानी का दिल चकनाचूर हो जाता है। यह सुनते ही दीवान हाल में बैठे अंकल की आह निकल गई। उन्होंने दिलबर को पांच पौंड देते

हुए कहा, 'ज्ञानी जी, यह लो थोड़ी सी सेवा, मेरी जिंदगी का यही पहला मौका है जब मैंने किसी गवैये को कुछ दिया हो, कुछ भी नहीं दिया कभी, यहां बड़े-बड़े आये हैं, दीदार सिंह रटैंडा आया, यमला आया...अमर सिंह शौंकी आया, पर यह आपका महारानी जिंदा वाला वाक्या सुनकर मेरा पांच पौंड देने को दिल किया, यह लो पकड़ो।'

लोक गायक दिलबर ने बोघा अंकल के मुंह की ओर हैरानी से देखा और पांच पौंड पकड़कर माथे पर लगा लिये। इसके बाद अंकल महारानी जिंदा वाले प्रसंग की तर्ज पर कविताएं लिखने लग पड़े। जब मैं पहली बार विदेश गया तो अंकल मुझे एक गुरु घर में मिले थे। लंगर छक रहे थे। मेरे घुटनों पर एक किताब पड़ी हुई थी। उन्होंने पूछा, 'सॉरी यंग मैन, मैं यह बुक देख लूं जरा?' यहीं से हमारी जान-पहचान हो गई। उन्होंने मुझे अपना फोन नंबर देकर कहा, 'मेरी ओर भी जरूर आना।' कुछ दिनों बाद मैं उनके घर गया। हमारी आपसी नजदीकी बढ़ गई।

बोघे अंकल की उम्र सत्तर वर्ष के लगभग हो गई है। बीस साल की उम्र में विदेश चले गये थे। पचास वर्ष वहां काट लिये, बहुत लंबा अर्सा है यह। अंकल जब भी यहां आते हैं तो, हर बार यही कहते हैं, 'अब नहीं जाऊंगा विदेश...क्या रखा है है वहां? पत्थर ही पत्थर, बर्फ-ही-बर्फ, बारिश-ही-बारिश, तेज़ ठंडी हवा, तूफान-ही-तूफान, बादल-ही-बादल, फीकी मुस्कान, हूटरों की आवाज, गली-गली पसरी उदासी, इंसान दरवाज़े...घर-घर अकेलापन, भयानक बीमारियां, बाहर से रौनक पर अंदर से उजाड़, भीगी गलियां, सीलन वाले घर, रात-दिन रन-वे पर पागलों की तरह दौड़ती फिरती जिंदगी, ओ माई गॉड...।'

एक दिन अंकल बता रहे थे, 'मेरे बैक यार्ड में रात को एक मोटी-भारी सी काली बिल्ली रोती है तो मुझे अपनी मौत नजदीक आ रही लगती है। फिर मैं पिछला दरवाजा खोजकर बिल्ली को भगाता हूं...हट तेरी मां की, मेरी नींद टूट जाती है, गोली खाने पर भी नहीं आती नींद, बड़ी चंदरी आवाज है काली बिल्ली की।'

वह विदेशी जीवन के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। कभी न खत्म होने वाली उनकी बातें दिलचस्प तो होती हैं लेकिन उन्हें सुनकर डर भी लगता है।

जब गांव के लोग अंकल के अलग-अलग वाक्यात सुनते हैं तो विदेश जाने, या अपने बच्चों को भेजने से तौबा कर लेते हैं, 'न भाई इससे तो अपने घर पर आधा पेट खाना अच्छा है, क्यों बच्चों को विदेश में धकेलें?'

कोई-कोई तो यह भी कह देता, 'बोघा सिंह, यदि विदेश इतना ही बुरा है तो फिर तुम क्यों गये भई विलायत? तुमने वहां जाकर बच्चे क्यों पैदा किये, घर क्यों खरीदे? रैस्टोरैंट क्यों बनाया फिर तुमने?'

वह कहता है, 'मुझे क्या पता था डीयर ब्रदर? मैं तो अच्छी ही समझकर गया था, क्या कमाया मैंने खाक और मिट्टी? तुम भी कमा लो जाकर, जो मैंने कमाया है...तुम यह देख लो, आखिरी समय मैं अकेला रह गया हूं, आप सभी यहां अपने परिवारों के साथ रहते हो, पुत्र-पोते सेवा करते फिरते हैं...किस्मत वाले हो आप सच्ची बात है?'

बोघा जब वहां चला जाता है, फिर कहता है, 'अब कभी नहीं जाना इंडिया, क्या है इंडिया में? जरा भी सफाई नहीं, सिर्फ गंद है, धक्के हैं, घर-घर क्लेश है, भ्रष्टाचार है, गंदी राजनीति है...सिस्टम नाम की कोई चीज नहीं है इंडिया में...ड्रग्स सरेआम बेचो, खरीदो और खाओ, जिसे मर्जी जेल भेज दो और जिसे मर्जी निकलवा लो, ओ माई गॉड...।'

बहुत कुछ और गिनता हुआ चला जाता है। थकते बिलकुल भी नहीं। पता नहीं 'कौवा' खाया हुआ है अंकल ने! लंबे-लंबे सांस भरता है। ब्लड प्रैशर की गोली भी पक्की लगी हुई है। कोलेस्ट्रोल बढ़ा ही रहता है। सांस भी फूला रहता है। कभी-कभी पेशाब भी बंद हो जाता है। पर कुछ भी हो, उन्हें शाम के वक्त तीन बड़े पैग लगाना नहीं भूलता। उसे पता नहीं चलता कि वह विलायत को सलाह दे रहा है या उसकी निंदा कर रहा है? कभी पंजाब के बारे में भांति-भांति के विचार बना लेता है। एक दिन अंकल के (यहां) पड़ोसी मास्टर जवंधा ने कहा, 'यार, तेरा नाम भी बोघड़ और तू रहा घोगड़,अपने विचार तो स्पष्ट कर लो बई इंड़िया अच्छा है या विलायत? तुम दोनों को ही अच्छा भी बोलते हो बुरा भी।'

'तुम्हें क्या पता है? निंदा न करूं तो और क्या करूं? ले सुन ले फिर, जब मैं पिछली बार इंडिया आया था तो रिश्तेदारी में किसी बच्चे की कोठी के मुहूर्त पर गया था। वहां जब भोग पड़ा तो मेरे जूते ही न मिलें। ढूंढ-ढूंढ कर थक-हार बैठे तो आखिर में भाई से स्पीकर से अनाऊंसमैंट की बई कोई जूते

गलती से पहन कर चला गया है तो वापिस कर दो। पर किस कंजर ने वापिस करने थे? दो सौ पाऊंड के मेरे शूज़...मेरे दोहते ने मुझे गिफ्ट किये थे कई साल पहले मेरे जन्मदिन पर। जब मैं विलायत वापिस गया तो बड़ी बेटी के घर गया। मेरे दूसरे शूज़ पहने देखकर मेरे बेरिस्टर दोहते ने कहा, 'पापा, वह मेरे दिये हुए शूज़ कहां है?' इतना सुनकर मेरा तो मुंह बंद हो गया। अब दोहते को क्या बताऊं? मुझसे झूठ नहीं बोला गया और सच बताया कि कोई उठा कर ले गया इंडिया में। यह सुनकर दोहता नाराज हो गया...'इतनी गंदी है इंडिया पापा...फिर आप बार-बार वहां क्या लेने जाते हो...मनी वेस्ट करने? अपनी इंसल्ट करवाने? सबसे बुरी चीज तो यह है कि पैर की जूती है न...जहां लोग इसकी चोरी से भी बाज नहीं आते, वह कहां के ग्रेट हुए? मैंने न्यूज पढ़ी थी कि पानी वाले पंप भी लोग चोरी कर लेते हैं वहां और बिजली की ट्यूब भी। आप कहते हो कि हमारी कम्युनिटी बहुत ग्रेट है...आई डोंट लाईक पापा...हमें मत कहा करो कि इंडिया चलो...इंडिया चलो।''

'बई, मुझे तो अपने दोहते से खरी-खरी सुनकर बड़ी शर्म आई मास्टरा...अब तुम बताओ, किसकी सिफारिश करूं और किसकी ना?' यह सुनकर मास्टर ने नई तान छेड़ दी, 'ओए बोघड़ सिंह, सच्ची बात तो यह है कि तुम्हारे बच्चे भी कौन-सा अच्छे हैं...यूं ही बेकार की तारीफ करते जाते हो हमारे पास तुम।'

अंकल को गुस्सा आ गया, 'मास्टर, आगे से ऐसे बात मत करना मुझसे...ओके? हां...मैं तुम्हें बताऊं, आई डांट लाईक मास्टर ऐसी बातें...ओके? यह तुमने इंडिया को लूटकर खा लिया, क्या ऐजुकेशन दी है लोगों को, बताओ जरा...मुफ्त की तनख्वाहें लेते रहते हो तुम, बताओ मुझे कि तुम्हारा पढ़ाया हुआ एक भी बच्चा कहीं चौकीदार भी लगा है?' बड़ी मुश्किल से जाकर अंकल बोघड़ का पारा उतरा। मास्टर चुप करके अपने घर जा घुसा।

काम वाली को पांच बजे ही कह दिया, 'बीबी, दो चपाती बनाकर रख कर घर चली जाओ। नहीं तो साले आस-पड़ोस वाले बेमतलब की बातें बनायेंगे। कहेंगे विलायती यह करता है, वह करता है। दूसरे गांव में बेशक कोई जो मर्जी कर जाये, बैकवर्ड लोगों को तो बोघा ही दिखेगा, कैसे लोग हैं...स्टुपिड साले...समझ ही नहीं आती...वहां (विलायत) कोई किसी की

परवाह नहीं करता, कोई कुछ भी करे! लोग नंगे चले फिरते रहते हैं, कोई देखता भी नहीं उनको, और यहां कभी धूप का चश्मा लगा कर गली में जाता हूं तो साले लोग कहते हैं वाह भई वाह विलायत वाले, यह तो बड़ी कमाल की ऐनक है...हमें भी ला दे ऐसी, मार लिया इंडिया को इन गलत बातों ने...भूखे-नंगे व डेरावाद ने।'

अंकल की मिक्स अंग्रेजी-पंजाबी सुनकर आस-पड़ोस के बच्चे भी एक-दूसरे से कहते फिरते हैं, 'ओके बई...ओ राईट आ...या-या...बड़ी रांग बात होई है यार, आज गुरुद्वारे का भाई बड़ी अर्ली बोलने लग पड़ा...ओ माई गॉड, बड़ी हाई साऊंड थी...विलायत में ऐसा नहीं होता भाई, ओ माई गॉड...ओ माई गॉड...।'

अंकल की नकल लगा कर बच्चे आपस में हंसने लगते थे। उनकी मां उन्हें घूरती थी, 'नकल न निकालो ओए, विलायतिये ने सुन लिया तो उसे गुस्सा चढ़ जायेगा...हटो यहां से।'

बोघा अंकल अकेले हैं। पत्नी को गुजरे तीन दशक बीत चुके हैं। उसको याद करता है तो लगातार रोता रहता है। हर साल उसकी बरसी वाले दिन अखंड-पाठ करवाता है। बेटे-बेटियां अपनी-अपनी दुनिया में मस्त हैं। दो बेटियां, दो बेटे। उनसे सलाह करते किसी ने नहीं देखा, बल्कि मनो पक्की गालियां देते देखा है। जब गांव में आकर संयुक्त परिवारों का समूह व समुदाय देखता है तो कहता है, 'यह बात विलायत में नहीं है यारो, हद हो गई यारो, इंसान अकेला ही घर में मर जाये, किसी को पता भी न चले! और यहां? गांव में किसी का भी सिर दुख रहा हो...पूरा गांव इकट्ठा हो जाता है पांच मिनट में...कोई मुंह में गोली डालेगा, कोई पानी पिलायेगा व कोई सिर दबायेगा। वहां बेटी-बेटा भी उठकर गोली नहीं देते, ऐंबुलैंस ही उठाने आती है मरे हुए को...थोड़े-बहुत रिश्तेदार सीधे फनरल होम जाते हैं और वहां के गुरु घर में बस। यह भी कोई मरना हुआ यारो? इंसान यदि मरे तो इंडिया में मरे। यदि पैदा होना हो तो विलायत में पैदा हो...सभी सहूलियतें पैदा होते ही। यदि पैदा हुए या मरने का ही पता न लगे तो संसार में आने का क्या फायदा हुआ?'

----------

एक दिन रोटी बनाने वाली न आई। उसकी मां बीमार थी, वह मायके चली गई मां का हालचाल जानने। अंकल बेचारा भूखों ही मर गया। न गांव

जाकर किसी को कहने लायक कि भाई दो फुलके ही बना दो। यदि कहता तो अगले कहते, आया बड़ा विलायतिया...रोटी मांगता फिरता है। क्या करूं? बाजार की रोटी पचती नहीं। दूध-चाय पीकर ब्रैड खाकर गुजारा किया यार। फिर अंकल कहने लगा, 'सच्ची बात तो यह है बई वहां भी बासी रोटी खाई है...गर्म करके और यहां भी।'

मैंने पूछा, 'यहां तो ताजी होती है...शीला रोज तो आती है पकाने।'

'वह रात के लिए दो फुलके भी सुबह उतार जाती है...वह गर्म कर लेता हूं, रात भी देर से ही खाता हूं...पैग लगाकर...तब तक ठंडी हो जाती है, यंगमैन, हमारे कर्मों में कहां गर्म-गर्म परौंठे?'

एक दिन मैंने फोन पर कहा, 'अंकल मेरे गांव चक्कर मार जाओ...कहो तो आकर ले जाऊं कार पर?'

उन्होंने जवाब दिया, 'नहीं यंगमैन...मैं आऊंगा पर बस पर ही...कार पर पैसे क्यों खर्च करने हैं।'

अंकल की एक और खास बात यह है जो उसे बाकी विलायतियों से काफी अलग बनाती है, वह कभी कार नहीं रखता, न विलायत में और न ही भारत में। यहां भी बसों व टैंपुओं में घूमता है और विलायत में रेलों व कोचों में। सभी हंसते हैं, 'बई बोघड़ सिंह, इतना पैसा क्या करना है...एक टूटी सी कार ही रख लो...आने-जाने में आसानी रहेगी।'

'ना ना...मुझे बिना मतलब की एडवाईज़ न दो...मैं चाहे कहीं पैदल चलकर जाऊं, चाहे हवाई जहाज पर चढ़कर जाऊं।'

दूसरी बात, वह सैल फोन न यहां रखते हैं न वहां। वहां घर पर फोन रखता है और यहां घर के बिलकुल पास ही दूध की डेयरी वालों के यहां फोन है। यही अंकल का पक्का नंबर है। संदेश ले-दे लेते हैं। डेयरी वाले लड़के अंकल के दोस्त हैं और अंकल से हंसते-खेलते रहते हैं।

अंकल दिन में आधा किलो दूध भी इनसे ही लेते हैं। एक दिन अंकल कहने लगे, 'आधा किलो दूध लेता हूं पर इसमें भी पानी मिलाकर देते हो, क्या बनेगा इंडिया का? छोटे से लेकर बड़े से बड़े काम में हर जगह हेराफेरी है, लो और सुन लो, हमारे साथ का धोबी है सती...तुम्हें पता है न बई भूख और नंगेपन से घुलता फिरता है, इनके बच्चों ने बड़े-बड़े महंगे तीन कुत्ते पाले

हुए हैं...एक-आध नहीं इकट्ठे तीन कुत्ते...साले पूरी रात भौंकना नही बंद करते...भाऊ...भाऊ...भाऊ...मेरी नींद खुल जाती है कि कोई चोर-डाकू आ गये हों...धोबी भी ढीठ है इन्हें भौंकने से नहीं हटाता। कुत्ते मेरी कोठी की छत्त पर आ जाते हैं...गंदगी फैला जाते हैं और काम वाली कहती है...कि मुझे खाना बनाने के लिए रखा है कि कुत्तों की गंदगी उठाने के लिए...दो बार काम छोड़ने की धमकी दे चुकी है,साले पूरे हरामी और बिगड़े हुए हैं हमारे पड़ोसी।'

मैं अंकल को लेने चला गया। उन्होंने लिफाफे में कुर्ता-पजामा, ब्रश, दवाई व जरूरत का सामान डाल लिया। दोपहर को हम गांव आ गये। शाम को मेरे भाई ने मुर्गा बनाया। बढ़िया मसाला डालकर बनवाई 'घर की निकाली' शराब अंकल के सामने रखी। पहले कहने लगे, 'भाईयों नहीं, मैं यह नहीं पिऊंगा,पता नहीं क्या गंद-मंद सा घोला हुआ है, मेरे पेट में गड़बड़ हो जायेगी...ओ माई गॉड।'

जब मैंने ढक्कन खोलकर उनकी नाक के पास ले जाकर उन्हें सुंघाया तो कहने लगा, 'वाह...वाह...इसी में ही लगायेंगे यारो।'

सवा पैग ने अंकल को काफी रिलीफ़ दे दी थी। वह तनाव मुक्त हो गया था। बड़ी प्यारी-प्यारी बातें करने लगा। बेबे ने कुंडे में पुदीने की चटनी रगड़ी और माह-चने की दाल चूल्हे के सामने बैठ कर बनाई। जब तंदूर से उतरती रोटी अंकल की थाली में रखी और हाथ से प्याज तोड़ा तो अंकल भावुक हो गये। इससे पहले उन्हें मैंने विलायत में उस दिन भावुक होते देखा था जब उनकी दोहती ने खुद से उम्र में 15 वर्ष बड़े अश्वेत के साथ शादी करवाई थी और अंकल की बेटी दो घंटे फोन पर रोती रही थी। अंकल ने कहा था, 'सैमी,बेटा...यह चंदरी विलायत हमें खा गई।' उस रात अंकल को अपसेट देखकर मैं भी काफी बेचैन रहा था।

खैर! हमारी मलवई सेवा अंकल के दिल को भा गई। वह चार दिन मेरे पास रहे। उनके दुख-गम कहीं उड़ से गये थे! कहने लगे, 'मुझे विलायत से आये हुए चार महीने हो गये हैं, कोई रिश्तेदार मिलने नहीं आया, कारण यही है कि बई बोघे ने किसी को कुछ नहीं देना, ना तो इसके पास कार है...न फोन है...न जेब में पैसे रखता है, न ही हमारे किसी बच्चे को विलायत लेकर जायेगा। सभी को पता है कि भई विलायत से आया है, गांव में धक्के खाते

फिर रहा है, फिर वहीं ही लौट जायेगा।' बताते हुए अंकल खिलखिला कर हंसने लगे।

घर से चलते हुए मेरी किताबों में रखी पातर साहब की एक किताब मांगी। अंकल बताते हैं कि एक बार लंदन आये पातर साहब उन्हें मिले थे। उन्होंने एक गीत वहां गुनगुनाया था, जिसके बोल थे :

जू बदेशा च रूलदे ने रोज़ी लई
उह घर परतणगे आपणे कदी
कुझ ता सेकनगे मां दे सीवे दी अगन
कुझ कबरां दे रुख हेठां जा बहनगे
कुझ किहा ता हनेरा जरेगा किंवें
चुप रिहा तां क्षमादान की कहनगे।

यह सुनते ही हाज़रीन की आंखें नम हो गई थीं। अंकल अपनी भारी आवाज़ में पातर साहब की तर्ज पर गीत के बोल गुनगुनाने लगे तो उनकी आवाज भर्रा गई। हम गांव से बस में चल पड़े।

हम बहुत हल्के-फुल्के मूड में गांव से चले। जब अंकल के घर के पास आये तो डेयरी वाले लड़के हमारा इंतजार कर रहे थे। पास में मास्टर भी खड़ा था, गली की एक-दो औरतें भी खड़ी थी। पीछे से अंकल का घर सेंध मारकर चोर टीवी, सिलेंडर, प्रैस, विलायती परफ्यूम व अन्य जो कुछ भी हाथ लगा था, सबकुछ ले गये थे। पैसा-टका या कुछ गहने तो नहीं मिले चोरों को तो वह अंकल के अंडर गारमेंट आंगन में बिखेर गये। जाते हुए चोरों ने एक अलग बात यह की कि वह अंकल के नाम कागज के एक टुकड़े में लिखकर बैड पर रख गये थे कि तुम कहां के विलायती हो? तुम लोग नंगे हो नंगे! हम तो बहुत उम्मीद से आये थे, हमारे हाथ तो कुछ भी नहीं लगा। तुम्हारे सड़े-गले व घिसे-पिटे कच्छे-बनियानों को क्या हमने फूंकना है? इससे अच्छे कपड़ों से तो हम अपने जूते साफ करते हैं। बने फिरते हो बड़े विलायती।

चिट्ठी पढ़कर व सामान बिखरा देखकर अंकल का बी.पी. बहुत बढ़ गया था। वह चिल्लाने लगे, 'हाय-हाय इंडिया, चोरों का इंडिया, कमीनों का इंडिया, भूखों का इंडिया, ना-ना-ना अब बिलकुल नहीं आना इंडिया, घर-घर चोर, गली-गली चोर, गांव-गांव चोर, अब नहीं रहना यहां...धक्के खाकर चला हूं...अब नहीं आऊंगा यहां, ओ माई गॉड...। '

अंकल हांफने लगे थे। उसने मास्टर से सैलफोन मांगा और ट्रैवल ऐजेंट को मिलाया, 'हैलो-हैलो,मोंगा जी, प्लीज़, मेरी जल्दी से टिकट ओके करो, मैंने जाना है, बस-बस मोंगा जी, अब नहीं आना कभी।'

अंकल रोने लगे। पूरी बात सुनने के बाद मोंगा जी ने कल सुबह के लिए अमृतसर एयरपोर्ट से टिकट ओके करवा दी थी। पूरी रात अंकल नहीं सोये, चोरों को गालियां निकालते रहे। कभी कहते थे, 'यह डेयरी वाले लड़के चोर हैं...और कौन है? या यही मास्टर ही है, किसी को भेजकर करवाया है यह सब, क्या पता शीला ने ही यह गुल खिलाया हो,अपने किसी यार को बोलकर,यदि मैं यहां सोया होता तो मुझे ही काट जाते साले, बस अब घर ही बेच दूंगा, यदि पुलिस के पास जाऊंगा तो भी अपसेट होऊंगा, उतना चोर नहीं लेंगे जितना पुलिस ले लेगी। हे मेरी इंडिया, तेरा ईश्वर ही रक्षक है। ला बई थोड़ा और दो, साली टैंशन कौन सी खत्म होती है।' मैंने थोड़ी और डाल दी।

दूसरे दिन अंकल का बैग टैक्सी में रखा। पड़ोसी मास्टर मिलने आया। अंकल कहने लगा, 'मास्टर मेरी कोठी बेचने के लिए लगा दो, मैं विलायत जाकर कॉल करूंगा तुम्हें...मास्टर मैं अब कभी भी यहां नहीं आऊंगा, ओ माई गॉड...।'

अंकल के आंसू निकल आये थे। मुझे उनपर बहुत तरस आ रहा था। डेयरी वाले लड़के पास ही खड़े थे। गली से कोई और नहीं आया। टैक्सी चल पड़ी। मैं भी बस अड्डे की ओर चल पड़ा था। 'विलायती अंकल' को पड़े 'देसी धक्के' मुझे भी उदास कर गये थे। सोचता जा रहा था कि अब बोघा अंकल कभी गांव नहीं आयेंगे, इस बार तो बहुत दुखी होकर कलप कर गये हैं।

डेढ़ महीना बीत गया था। खैर-खबर जानने के लिए मैंने फोन किया। अंकल ने बताया कि उन्होंने एक दिन उसी पड़ोसी मास्टर को फोन किया था। कोठी नहीं बिक रही थी। यदि कोई तलाशता भी तो मुफ्त में तलाशता था, कोड़ियों के भाव। रैंट पर देनी नहीं थी। किराये वाले दबा लेंगे या तोड़फोड़ कर चलते बनेंगे, यंगमैन, तुम ही बताओ, कितने चावों से मैंने अपने हाथों से पैसे लगाकर इसे बनाया था, यूं ही कैसे दे दूं...ओ माई गॉड...पर यंगमैन अब मैं कभी पंजाब नहीं आऊंगा। अब तो अपनी हड्डियां ही आयेंगी यहां, वह भी तभी आयेंगी, यदि कोई समझदार बेटा-बेटी लेकर आये तो।'

खैर! कई महीने बीत गये, दोबारा अंकल से बात करने का मौका नहीं

मिला। यहां मैं भी आस्ट्रेलिया जाने की तैयारियों में लगा हुआ था। एक दिन अंकल से बात करने का मन किया तो फोन घुमा दिया। देर तक रिंग जाती रही। अंकल की जगह किसी ने अंग्रेजी और करारे अंदाज में हैलो कहा और पूछा, 'आप कौन?'

मैंने अपनी पहचान बताई। आगे अंकल का पोता गैरी बोल रहा था। मैं अंकल के साथ उसे कई बार मिला हुआ था। गैरी कहने लगा, 'डियर, इस घर में तो मैं और मेरी गोरी फ्रैंड जेनी रहते हैं...मेरे ग्रैंड फादर तो तीन महीने पहले ही पक्के तौर पर इंडिया मूव हो गये हैं, हमे कह गये हैं कि मैंने अपनी बर्थ प्लेस पर ही मरना है, आप उन्हें गांव जाकर मिल लो...ओके? बाय-बाय...थैंक्स डीयर!'

'हैं...? अंकल फिर गांव वापिस आ गये?' मेरे मुंह से स्वाभाविक ही निकला। तब तक फोन बंद हो गया था।

# ओत्थे मां नईयो मिलनी...

गुरबचन सिंह थिंद ने कार घर से निकालते ही रेडियो का कान मरोड़ दिया था। पंजाबी कार्यक्रम में गीत बज रहा थाः

ना जाईयो परदेस
उत्थे नी मां लभनी...

अंकल ने कहा, 'यहां के रेडियो स्टेशनों वाले भी बड़े तीखे हैं। यह जो गीत है यह गीत इमोशनल है, इसीलिये लगाया है कि प्रदेश आये हुए लोगों के मन पर असर करे और वह फोन कर-करके इस कार्यक्रम की तारीफ करें। जितना किसी रेडियो वाले को श्रोताओं के अधिक फोन जाते हैं उतना ही लोग उस प्रोग्राम को सुनते हैं। क्या कम जनता आई है यहां? अभी भी आ रहे हैं लंबी-लंबी कतारों में जैसे पक्षी एक साथ इकट्ठे चलते हैं। जैसे पूरा पंजाब ही आ गया है यहां! हम तो अच्छे समय में यहां आ गये थे तब कोई विरला ही विलायत की ओर मुंह करता होता था।' लुधियाना जिले के गांव रछीन का पला बढ़ा गुरबचन सिंह थिंद पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री जस्टिस गुरनाम सिंह का राजनैतिक सलाहकार रहा। जब उसकी सरकार टूटी तो थोड़े समय के बाद वर्ष 1968 में विलायत आ गया। यहां आकर काउंसलर बना। फिर डिप्टी मेयर और फिर मेयर रहा।

हमारी कार सलोह व साउथ हॉल की ओर मोटर वे-4 में दौड़ी जा रही थी। साथ ही लगते हीथ्रो एयरपोर्ट पर जहाज पल-पल चढ़ उतर रहे थे। मुझे हर जहाज ही इंडिया के लोगों से भरा आया लगता था कि जैसे इसमें से छात्र-छात्रायें कतारबद्ध होकर उतरेंगे कि, 'हे प्यारे लंदन हमें जगह दे, नौकरी दे, अब हम तेरे वासी तेरे आसरे।'

जब बात चल पड़ी तो थिंद ने कहा, 'आज तुझे एक ऐसी जगह दिखाते हैं जहां पंजाबी मज़दूर ऐसे खड़े होंगे जैसे लुधियाना की घुमार मंडी में सुबह-सुबह श्रमिक खड़े होते हैं दिहाड़ी ढूंढने के लिए।'

हम गुरुद्वारा साहिब की पार्किंग में कार पार्क करके बाहर आये। उसने

बताया, 'यह है कल्हा चौक पहले इसे किंग स्ट्रीट कहते थे। बारह-तेरह सालों से इसका नाम कल्हा चौक पड़ गया। वह जो स्टोर है बड़ा सा, यह कल्हा नामी गोत्र का है। घर बनाने के लिए हर बड़े से बड़ा व छोटे से छोटा जो सामान मिलता है। इस चौक से बीस मील तक की दूरी पर मजदूर आसानी से व सस्ता मिल जाता है। तभी तो यहां मजदूरों का झुंड रहता है। सुबह-सुबह तो बहुत बार सैंकड़ों में इकट्ठे होते हैं। जैसे पंजाब में किसी टैक्सी स्टैंड पर आये किसी ग्राहक को आगे हो-होकर पुकारते हैं, जिद कर-कर के बिलकुल वैसे भागते हैं आगे हो-हो कर कि मुझे ले जाओ, मुझे ले जाओ की आवाज़ें जोर-जोर से सुनती हैं।'

कल्हा चौक के नजदीक ही तीन गुरुद्वारे हैं। अफगानिस्तान से आये सिखों की ओर से बनाये गये गुरु घरों को अफगानियों का गुरुद्वारा कहा जाता है। गुरु अमरदास गुरुद्वारे से नजदीक ही हैवलुक रोड पर 15 मिलियन पौंड खर्च करके बनाया गया सब से बड़ा गुरु घर है। बताया गया कि काम की तलाश में कल्हा चौक आकर बैठने व खड़े होने वाले पंजाबी कामगार इन गुरु घरों से जी भरकर भोजन खाते हैं। मैंने देखा कि 16 साल से लेकर 60-70 साल तक के यह कामगार आती-जाती कारों की ओर झांक रहे थे।

जालंधर के नजदीक के एक गांव से आया लगभग पचास वर्षीय जौहल हमसे पूछता है, 'कैसे भाई जी, है कोई काम?'

'नहीं, हम तो वैसे ही घूम फिर रहे हैं।' कहकर थिंद उसके साथ बातें करने लगता है। वह बताता है, 'घर भी क्या करना है यूं ही बैठकर, मेरा बेटा यहां रहता है। बेटा व बहू काम पर और मैं इधर को निकल पड़ता हूं। तीन दिन हो गये पर कोई काम नहीं मिला। पिछले हफ्ते दो दिन काम मिल गया था। बहुत लोग मेरे जैसे बेकार बैठे हैं। यहां आकर खड़े रहते हैं। कईयों का तो हफ्ते में एक दिन भी काम नहीं लगता। गुरु घर से प्रसादा और शाम को घर जाकर तीत्तर मार्के के दो पैग लगाये और सो गये। यही विलायत की जिंदगी है भाजी।'

मैंने जौहल से पूछा, 'कितने पौंड दिहाड़ी चलती है?'

'बीस पौंड से लेकर तीस पौंड तक। कई बार काम से मजबूरी में कुछ न कुछ जेब में पड़ता रहता है पर अब काम है नहीं। विद्यार्थी बहुत आ गये हैं और उन्होंने दिहाड़ी के भाव गिरा दिये हैं।'

जौहल को हमारे साथ बात करते देख कर उसके मोगा जिले का एक दोस्त, अच्छी कद-काठी वाला करीब 60 वर्षीय गिल सरदार भी हमारे पास आकर खड़ा हो जाता है और बातचीत में हिस्सा लेता है। बताता है, 'मैं तो विजिटर आया था अपनी बेटी को मिलने। मेरी पत्नी भी आई है साथ। महंगी टिकटें व अन्य खर्चे। लड़की कहती है कि भापा-बीबी, आपके पास छह महीने का वीजा लगा है। साढ़े पांच महीने काम ही कर लो। वीजा खत्म होने के पंद्रह दिन पहले भारत वापिस चले जाना। कुछ न कुछ जुड़ ही जायेगा। मैं इसी लालच में यहां आ जाता हूं कि चलो खर्च-वर्च ही निकल जायेगा। लड़की अपनी मां के साथ जाती है। रबड़ के खिलौने बनाने वाली फैक्ट्री में। अपने बॉस को बोलकर मां को साथ काम पर लगा लिया बेटी ने। साथ ही वापिस घर आती हैं मां बेटी, बस में जाती हैं। भारत में हमारे पास दो कारें थीं। बस में पैर रखे भी 15 साल हो गये और मुझे बहुत सुबह भूख नहीं लगती। चाय पीकर आ जाता हूं, जब भूख लगती है तो तीनों गुरु घरों में जिस मर्जी पर चले जाऊं माथा टेककर बानी सुन व पेट पूजा करके यहां गप्पें-शप्पें मारते हैं।'

मैंने पूछा, 'फिर अब तक कुछ खर्च जुड़ा भी कि नहीं?'

'दो महीने हो गये हैं मेरे पास तो पौने दो सौ पौंड ही बना है अब तक। वैसे इतने और बना लूंगा जाने तक तो कुछ बेटी जमाई के हाथ भी गर्म कर जायेंगे।'

'आंटी का काम तो अच्छा होगा रबड़ के खिलौने बनाने वाला?'

'हां, उसने तो अब तक पांच सौ के नजदीक बना लिये हैं।'

थिंद ने पूछा, 'पीछे काम-काज कैसा है बाकी परिवार ठीक-ठाक है?'

गिल ने बताया, 'पैंत्तीस किल्ले हैं जट्ट के। दो बेटे हैं, एक शादीशुदा है और दूसरा कुंआरा है पढ़ चुका है। यहां बेटी कहती है कि यहां बुलाने का जुगाड़ करते हैं उसका। अपनी तो वहां सरदारी है। खुद श्रमिक लेने जाते हैं स्टेशन से और अब आप यहां श्रमिक बने खड़े हैं। भाई यह परदेसों के मामले हैं न?'

जौहल और गिल से बातें करके मैं व थिंद गुरु घर चाय पीने चले जाते हैं। वह बताता है, 'आज नहीं कल हमें भी एक मजदूर चाहिए, कल लेने आयेंगे हम। सुन ही ली हैं तुमने इनकी बातें? देखा विलायत के रंग, अच्छे-भले और संपन्न इंसान भी मजदूर बने खड़े हैं विलायती चौक में। दूसरे दिन

हम काफी जल्दी आ गये। थिंद अंकल ने घर के दरवाजे कसवाने हैं। वह कहता, 'घूम-फिर के ढूढ़ेंगे कामगार जो सस्ता होगा उसे ही लेकर जायेंगे। तूने किसी के साथ बातचीत करनी है कर लेना पर यह न बताना कि मैं अखबार में कॉलमनिस्ट हूं और तुम्हारे बारे में लिखना है। फिर कोई बात नहीं करेगा तुमसे, सभी को शर्म आती है।'

पूरे बैंच पर एक ही आदमी बैठा है। उम्र 40 से उपर है। सुंदर पैंट कमीज पहनी है साथ में खूबसूरत पगड़ी, बूट भी बढ़िया। मैं सरसरी तौर पर सत श्री अकाल कह के उसके पास जा बैठता हूं। वह मेरी सत श्री अकाल का टूटा हुआ सा जवाब देता है। मैं पांच मिनट तक चुप बैठता हूं। फिर बात छेड़ता हूं, 'काफी मंदी आ गई है काम में भाजी' वह मुझे भी काम ढूंढने आया लड़का समझता है और हम बातों में लग जाते हैं।

'भाई साहब, मैं तो वापिस भारत जा रहा हूं यहां कुछ भी नहीं है। अपने देश में ही अच्छे। मैं तो महीना भर पहले ही आया था। जब काम ही नहीं है तो क्या करना यहां? न तो यहां के सिस्टम और न ही काम-काज के बारे में मुझे कुछ पता है। मैं थोड़ा झूठ बोलकर उससे कुछ बातें निकलवाना चाहता हूं और साथ ही पूछता हूं, भाई साहब जी आपको कितना समय हुआ है यहां आये हुए?'

'सात साल हो गये। मेरा गांव होशियारपुर के साथ है। तेरा कौन सा गांव है?'

मेरा गांव पूछकर वह बताता है, 'इटली से आया हूं जान हूल कर मर-मर कर...इललीगल हूं भाई...जा भी नहीं सकता.. क्या करूं उधर इंडिया में? गांव में बच्चे शादी करने लायक हो गये हैं। छोटे-छोटों को घर छोड़कर निकला था। इस साली विलायत का भी भेद जल्दी समझ नहीं आता। काम नही देता कोई इल लीगल को...सरकार ने दस हजार पौंड जुर्माना रख दिया है कि जो भी इल लीगल को काम देता पकड़ा गया...इंडिया का सात लाख बना...कौन फंसे?'

'भाई क्या बनेगा? मैं तो खुद तीन लाख देकर आया था, वो भी पूरा नहीं हुआ।'

'तू तीन लाख को रो रहा है यहां दस-दस, पंद्रह-पंद्रह लाख खर्च के बहुत दुनिया आ चुकी है। पैसा नहीं बन रहा। काम का भी तुझे बताता हूं, रंग रोगन करना, घास उखाड़ना, साफ-सफाई, घर में सफाई, शीशें, खिड़कियों, चुगाठों की सफाई...जिसे लकड़ी या ईंट का काम आता है वह अच्छा है।

अगर पुलिस छापा भी मारे उन्होंने बंद घर में काम करना होता है, पीछे की दीवार के ऊपर से छलांग मारो...और भाग के छुप जाओ। यहां भी पुलिस महीने डेढ़ महीने बाद छापा मारती है। कल्हा चौक...गलियों में भागते देखने वाले होते हैं लोग...।'

'फिर भी भाजी, इल लीगल को काम पर ले ही जाते हैं लोग...क्या तरस खाकर?'

न...न...तरस-तुरस कोई नहीं...जब गोरा साठ पौंड मांगता है तो अपने ही इल-लीगल आदमी को चोरी-छुपे बीस-तीस पौंड पर उठा ले जाते हैं।

तख्ते कसाने के लिए कामगार को ढूंढता थिंद अंकल हमारे पास आ गया, 'चलें बई आजा,आदमी मिल गया...वह जायेगा अपने साथ...एक को मैंने पूछा क्या जाना है? तख्ते कसवाने हैं...कहता है जाना है। मैंने पूछा तेरे पास सामान है...टूल बॉक्स है? कहता है नहीं तो मैंने फिर कहा, फिर मैंने क्या करना है तुझे ले जाकर। जब फौजी के पास रायफल ही नहीं है तो जंग क्या खाक लड़ेगा? अब वह आदमी जायेगा। कहता है मेरा कमरा नजदीक ही है। घर से उसका टूल बाक्स उठाना है। '

हमने उसे अपने साथ कार में बिठाया। कमरे से उसने टूल बॉक्स उठाया। अंकल उसे कहता, 'यह लड़का इधर के बारे में कहानी लिखेगा...इसे कुछ बता यार, लेखक को।' रास्ते में जाते-जाते उसे पूछा कि कितने लोग रहते हैं इस कमरे में? उसने बताया कि सात लोग रहते हैं भाजी...यह कोई रहना है भला? न तो अच्छी तरह से नहाया जाता है न ही खाया जाता है और न ही सोया जाता है, न ही लैट्रीन जाया जाता है। हमेशा भीड़ रहती है, हर कोई जल्दी में होता है। तीन दिनों की इकट्ठी दाल बना लेते हैं...जरूरत भर तड़का लगा लेते हैं। सब ने अपने-अपने काम बांटे हुए हैं। कोई आटा गूंधता है, कोई रोटी बनाता है, कोई बर्तन की सेवा करता है। यहां काम हैवी है भाईजी, खुराक पूरी नहीं मिलती...वीकैंड में सब इकट्ठे होकर बैठ जाते हैं...पैग लगाते हैं...इंडिया फोन करके मन हलका कर लेते हैं। गांव याद आता है...अपना परिवार...भाई-बहन...रिश्तेदारों व मित्रों को बहुत मिस करता हूं। भाईजी काम मंदा पड गया है यहां...आप लोग लिखकर बताओ कि संभल जाओ...मत भेजो अपने बच्चों को...हम तो फंस गये भाईजी। उससे आगे नहीं बोला गया।

थिंद अंकल के किराये पर चढ़ाये घर मे आये। कामगार ने आठ घंटे काम किया। चालीस पौंड मांग रहा था। अंकल ने तीस दिये। टूल वाला बैग संभाल कर वह बस में चढ़ गया।

* * * *

विलायत आये हुए मुझे लगभग चार महीने हो गये। तब से सूरज ठीक ढंग से नहीं दिखा। धूप व बादल आंख-मिचौली खेलते रहते हैं। पता नहीं कब बूंदाबांदी शुरू हो जाये और कब बारिश रूपी दुपट्टे को धूप उतार फेंके। गोरे लोग चिप-चिपे मौसम को पसंद नहीं करते। जब धूप निकलती है, गोरे लोग नंगे बदन घूमते हैं और कपास के फूल की तरह खिले नज़र आते हैं। वह धूप का मजा लेते हैं। जिस दिन अच्छी धूप निकले तो हमारे लोग कहते हैं– 'आज तो दिन सुहावना लग रहा है।'

मैंने देखा, पंजाब से आये जो लड़के बिल्डर हैं,(घरों के निर्माण और मरम्मत का काम करते हैं) कई बार बारिश आने से उन्हें दिहाड़ी नहीं मिलती, तो वह उदास हो जाते हैं। वह टीवी चैनलों से पता करते रहते हैं कि कल दिन साफ है या बारिश आयेगी। बहुत से स्टूडेंट आये लड़के बिल्डर का काम करते हुए खर्च किये गये लाखों रुपये जोड़ने के लालच में कुढ़ते दिखे। कईयों ने तो यह भी कहा है कि विलायत आने के लिए पैसे बहुत जल्दी पूरे नहीं होंगे। कई बार मौसम का बुरा हाल, कई बार काम में मंदी, स्टूडेंट्स का बहुत रश होने के कारण अब काम भी बहुत सस्ता मिलने लगा है। जिस काम का आज से साल भर पहले दिहाड़ी के तीस पौंड मिलते थे, अब कोई बीस पर भी नहीं रखता।

मैंने खुद भी देखा है, लड़के-लड़कियां दस-दस पौंड दिहाड़ी पर काम करने के लिए नाक रगड़ते फिरते थे। एक दिन मैं अपने कवि मित्र शेखर के घर अवतार उप्पल के साथ गया। उसके नये घर में तोड़-फोड़ का काम चल रहा था। घर के बाहर बिल्डर के साथ आया एक पंजाबी लड़का टूटी ईंटों और लकड़ी के टुकड़ों को इकट्ठे करता देखकर मैंने पूछा, 'क्या हाल है?' उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था। वह बहुत मुश्किल से चल रहा था। चाल उखड़ी हुई थी।

उसने थकी-टूटी आवाज में कहा, 'ठीक है भाजी।' और वह अपने काम पर लगा रहा।

मैंने पूछा, 'कब आये?' उसने कहा–'कोई पंद्रह दिन हो गये हैं भाजी।'

'स्टूडेंट आये लगते हो?'

'हां भाजी, पटियाला से हूं।'

मैंने कहा, 'आते ही काम पर लग गये...विलायत तो देख लेते?'

'कहां नसीबों में है विलायत देखनी भाजी...यहां तो कोल्हू के बैल हैं।' उसकी आवाज भर्रा गई थी और वह अंदर से लकड़ियों के टुकड़े लेने चला गया था।

पंजाब से आये विद्यार्थियों की ओर देखकर मन उदास हो जाता है। बेचारे लाखों रुपये खर्च करके पढ़ने आये हैं। अच्छे-अच्छे और खाते-पीते घर के बच्चे हैं। यहां आकर मजदूरी कर रहे हैं। काम मिल ही नहीं रहा। एक-एक घर में आठ-आठ लोग मुश्किल से रहते हैं। सख्त मेहनत करते हैं। कई बार तो मेहनत का मूल्य भी पूरा नहीं मिलता। माथा पकड़-पकड़ कर रोते हैं। इनकी ओर देखकर यूं लगता है कि पंजाब के सभी घर जैसे खाली हो गये हैं। सब लड़के-लड़कियां इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया और इटली व अरब देशों की ओर भाग आये हैं। जैसे पंजाब में हर चीज का अकाल पड़ने वाला हो! क्या बनेगा पंजाब का? यदि हमारी जवानी भूख व भय के मारे पंजाब को छोड़-छोड़ कर भागती रहेगी तो पीछे कौन रह जायेगा? सो, यह एक अलग विषय है और प्रवासी कान्फ्रेंसों में गंभीर चर्चा की मांग करता है।

विलायत पब-क्लब का देश है। जग जितने बड़े-बड़े गिलास बीयर के भरकर गोरे-गोरियां घूंट-घूंट भरते हैं, सिग्रेट के कश खींचते मस्ती लेते हैं। हमारे पुराने आये लोग सप्ताह के अंत में पबों पर जाते हैं। यह भी यहां पुराना रिवाज है कि आये मेहमान को पब में ले जाया जाता है। बहुत से पब बिक गये हैं। बीयर का बड़ा गिलास साढ़े तीन पौंड का हो गया है, जबकि ठेके से बीयर एक पौंड का एक डिब्बा मिल जाता है। बीयर पीने को कहते हैं कि डिब्बा लगा लिया। पैग लगाने को कहते हैं-गलासी लगा ली। साऊथहाल का 'गलासी जंक्शन' बहुत मशहूर है। मैं यहां दोस्तों के साथ बहुत बार गया। गलासी लगाने से पहले डिब्बा लगाया जाता है। लोग कहते हैं–'पहले कच्ची का मजा लें, फिर पक्की लेंगे।'

----------

यहां गुरु घरों में पैदा हुए चौधर के क्लेश से मेरा मन बहुत दुखी हुआ।

अखबारों में इश्तिहार दे-देकर नयी पुरानी कमेटियों के चौधरी एक-दूसरे पर मनो कीचड़ उछालते हैं। जहां इन बातों से मेरा मन दुखी हुआ, वहीं इस बात से सुखी भी हुआ कि गुरु घर भूखों का पेट भरता है। बेआसरे बुजुर्ग व विद्यार्थियों का बड़ा सहारा है यह गुरु घर। अपने-अपने दुखों के सताये और बोझ से लदे लोग गुरु घरों में शांति लेने जाते हैं परंतु वहां लड़ाई देखकर अशांत हो घरों को लौटते हैं।

पंजाब में जैसे एमएलए के चुनाव होते हैं, वैसे ही यहां गुरु घर के अध्यक्ष का चुनाव होता है। सब कुछ चलता है। बड़ा जोर भी लगाया जाता है। दोनों पक्ष ऐड़ी-चोटी का जोर लगा देते हैं। इनसे अखबारों और मैग्जीनों को विज्ञापन से बहुत कमाई होती है। अखबार व रेडियो वाले भी गुटबाजी का शिकार होते हैं।

यहां हर दस वर्ष बाद सर्वेक्षण किया जाता है कि लोग क्या खाते हैं? क्या पहनते हैं? स्वास्थ व शिक्षा के बारे में भी सर्वेक्षण होता है। खाने के मामले में पहले इनका मनपसंद खाना आलू और मछली था, इस बार 2010 में तरी वाले भारतीय खाने पहले नंबर पर आये। गोरे-काले अब हमारे खाने को बड़े चाव से खाते हैं। भारतीय, खासतौर पर पंजाबियों के रेस्टोरेंट में गोरों की भीड़ होती है।

एक बात देखकर मुझे बहुत खुशी हुई, वह यह कि अब गोरे और काले, जो हमारे पंजाबियों के साथ काम करते हैं, वह अब पंजाबी सीखने लगे हैं और कई जगह मैंने देखा कि गोरे और काले पंजाबियों को कुछ यूं बुलाते हैं–'ओह...किद्दा...ससरीकाल...पाजी...टीक ऐ।' इस तरह के वह मोटे-मोटे पंजाबी शब्द सीखने लगे और हमारे लोगों ने उनमें अपने वाली सभी आदतें डाल दी हैं। बूढ़े-बूढ़ियां, जो मैंने कुछ अंग्रेजी के आम वाक्य बोलते हुए सुना, वह हैं–'ओ राईट...ओके आ, सौरी आ, एक्सीऊज़ मी, नो गुड, हैपी आ, मी डोंट लाईक, मी नो माइंड' ऐसे यह लोग टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल कर अपना-अपना तरीका अपनाते हैं।

यहां इंसान ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता जाता है, त्यों-त्यों अमीर होते जाते हैं। इंडिया में बुढ़ापा गरीबी भी साथ लाता है, क्योंकि पूंजी घटने लगती है, बंटवारा होने लगता है, खर्च बढ़ते हैं और विलायत में बूढ़े घर का कर्ज़ा उतार जाते हैं। बच्चे पढ़-लिखकर नौकरियां लगकर और विवाह करवाकर अपने-अपने

घर चले जाते हैं। पैंशन अच्छी मिलती है दोनों को। स्वास्थ्य सेवायें मुफ्त। बस-रेल पर आना-जाना मुफ्त। यदि अपना घर ना हो तो बूढ़ों को कौंसिल की ओर से रहने के लिए सुंदर-सुंदर छोटे घर दिये जाते हैं। पूरा ख्याल रखा जाता है बूढ़े-बूढ़ियों का।

यहां सौतेली मांयें बहुत हैं। यहां के पैदा हुए व पले-बढ़े बच्चे सौतेली मां के पैरों को बहुत कम हाथ लगाते हैं। ज्यादातर तो मां भी कहना पसंद नहीं करते और सौतेली को उसका छोटा नाम लेकर या आंटी कहकर बुलाते भी देखे।

सलोह के पूर्व मेयर गुरबचन सिंह थिंद और मैं उनके घर के नजदीक एक पार्क में सैर कर रहे थे। एक गोरा अपने कुत्ते को सैर करवा रहा था। थिंद ने उसे पूछा–'लिफाफा है तुम्हारे पास?' गोरे ने झट से पैंट की जेब से लिफाफा निकालकर दिखाते हुए कहा, 'यस...।' थिंद ने उसे थैंक्यू कहा और मुझे बताया कि कई लोग अपने कुत्तों को सैर करवाने लाते हैं। वह पखाना कर जाते हैं। यहां कानून है कि कुत्ते के मालिक अपने साथ लिफाफा रखे,यदि कुत्ता शौच करे तो वह उठाकर लिफाफे में डालकर उठा ले। पार्क साफ रहे, यहां गंद के कारण लोगों के पैर गंदे ना हों, यदि कोई उल्लंघन करे तो सीधा हजार पौंड जुर्माना।

मुझे लंदन की बसों और रेलों में सफर करने का बहुत अच्छा अवसर मिला। हमारे और गोरों के बीच जमीन आसमान का फर्क है, गोरे लोग सफर करते वक्त अपनी-अपनी किताबें पढ़ते हैं या हैडफोन लगाकर संगीत सुनते रहते हैं। हमारे लोग आस-पास झांकने का काम ज्यादा करते हैं। हमारे लोग सैल फोन सुनते या बात करते समय बहुत ऊंचा बोलते हैं, गोरों के सुर बहुत धीमे होते हैं, सिर्फ उनके सुनने लायक। हमारे लोगों को ऊंचा हंसने, ऊंचा बोलने, बगलों को खुजलाने की आदत से गोरे बहुत हैरान होते हैं। नये आये पंजाबी तो नाक में उंगलियां फेरने और चलते-चलते थूकने की आदत से बड़ी मुश्किल से छुटकारा पाते हैं। हमारी यह बुरी आदतें गोरों को बहुत चुभती हैं। वह खींझते हैं कि इन लोगों ने आकर हमारे देश में गंद डाल दिया।

एक दिन मुझे एक पंजाबन लड़की का फोन आया। यह फोन सुनने के बाद मैं काफी देर तक उदास रहा। लड़की कहने लगी, 'भाजी आपके हर सप्ताह यहां अखबार में लेख पढ़ती हूं, कभी आप हमारी कहानी सुनकर भी लिखो।' मैंने कहा कि बहन बताओ तो सही। लड़की ने बताया, 'वीर जी,

इंडिया से आये हुए तीन साल होने वाले हैं, स्टूडेंट आई थी, काम भी करती हूं, बहुत तंग हूं, मां रोज फोन करके कहती है, जल्दी लड़का ढूंढ कर शादी करवा कर वहां पक्की हो, और हमें भी बुलाओ, जल्दी करो, तुम्हारे भाई यूं ही फिरते हैं। वीर जी...मेरे मन पर बहुत भार है, कहां से ढूंढूं मैं लड़का...? कैसे करूं शादी और पक्की होऊं...मेरे घरवालों ने मेरे बारे में कुछ नहीं सोचा...वीर जी, लड़के यहां क्या पड़े हुए हैं? कौन करवायेगा मुझे पक्का?'

अपनी बात बताते हुए लड़की फूट-फूटकर रोने लगी थी। मैं उसे हौंसला देता रहा। उसने कहा, 'वीर जी, यह मेरी अकेली की बात नहीं...और भी बहुत सी लड़कियों की कहानी है, स्टूडेंट लड़कियां इस तरह भेजी हैं, जैसे सदा-सदा के लिए घर से निकाल दी हों और वापिस इंडिया में नहीं लौटना हो।'

लड़की के यह बोल, 'वीर जी, यह बहुत सी लड़कियों की कहानी है।' मेरे मन-मस्तिष्क में बुरी तरह हलचल मचाने लगी थी। मैं सोच रहा था कि कितनी रंग-बिरंगी है विलायत और कैसे हैं हमारे पंजाबी लोग, जो लड़कियों को भटकने के लिए भेज देते हैं यहां! यह देख-सोच कर मैं बहुत उदास था।

# विलायती अदालतों का एक चक्कर

कनाडा-अमेरिका भी बेशक जा चुका हूं, और चाहत भी रही है कि वहां की अदालतें देखूं। परंतु संयोग ही नहीं बना। इन देशों की अदालती प्रक्रिया के बारे में अधिक-से-अधिक जानने की चाहत शायद इसलिए भी रही कि मैं खुद भी कुछ समय भारतीय अदालत प्रणाली में काम करता रहा हूं, बेशक एक छोटे कर्मचारी के तौर पर ही सही।

ग्लॉस्टर शहर में स्थित क्राऊन कोर्ट देखने जाते हैं। साथ ही निर्मल थिंद अंकल भी हैं। वह हंसते हैं, 'ईश्वर अदालतों के चक्कर न लगवाये, आज तुम्हारे साथ मैं पहली बार आया हूं।' क्राऊन कोर्ट वहां उच्च अदालत होती है, इंडिया की सैशन कोर्ट के बराबर की। इस के बाद हाईकोर्ट। हम एक बड़ी सी चौरस आकार की बिल्डिंग में जा घुसे। सिक्योरिटी अधिकारी एक फीकी सी मुस्कारहट के साथ आने का कारण पूछने लगा। अंकल ने बताया कि इंडिया से आया है, विज़िटर है, वहां खुद भी अदालत में काम करता रहा है। लेखक है। यहां की कोर्ट देखना चाहता है। सुरक्षा अधिकारी ने कहा, 'वैल्कम...अपने सैल फोन बंद कर लो और ऊपर सीढ़ियां चढ़ जाओ...कोर्ट लगी हुई है।'

हम लोगों के बैठने वाली गैलरी में दाखिल हुए। सैंकड़ों लोगों के बैठने के लिए बनी गैलरी में सिर्फ एक महिला बैठी अदालती कार्रवाई देख रही थी। नीचे खूबसूरत गोल गैलरी में अदालत लगी हुई थी। काला गाऊन और सिर पर विग पहने बैठा पचास वर्षीय अंग्रेज जज लिखता जा रहा था। कहीं से सांस लेने तक की आवाज नहीं आ रही थी और ना ही पैरों की खड़खड़ाहट की आवाज। यदि कोई चलता भी, तो संभल-संभल कर पैर रखता। अदालत के सम्मान के तौर पर सिर झुकाकर अंदर आता और सिर झुका कर ही बाहर जाता। अदालत में भीड़-भाड़ नहीं थी। ना किसी को जल्दी थी, ना ही कोई अफरा-तफरी। गैलरी में बैठा मैं भारतीय अदालतों खासतौर पर पंजाब की न्यायिक अदालतों के बारे में सोचने लगा, जब मैं अर्दली होता था, तो देखता

था कि कैसे लोग हो-हल्ला मचाते थे कि मुझे पहले पुकार भाई, मुझे कब पुकारा जायेगा, दिन यहीं छिप गया, कोई दौड़ता और हांफता आता। कोई वकीलों और उनके मुंशियों को आवाज मारता फिरता कि आ जाओ अब आ जाओ, जज पुकार रहा है, कब से पुकारा जा रहा है, लेट हो गये तो जज केस ही उलटा कर देगा। पर यहां विलायत की अदालत में ऐसा कुछ नहीं था। ना कोई दौड़ता था, ना कोई हांफता था, ना कोई किसी को आवाज़ मारता था। यदि कोई बात करता तो मुंह में ही बोलकर अपनी बात करता था। जज के सामने नीचे की तरफ उसकी दो सहायिकायें बैठी हुई थीं, एक की वर्दी जज वाली थी और दूसरी सादे कपड़ों में। एक कंप्यूटर पर काम करती थी तो दूसरी कुछ ऑडियो कैसेट्स पर नंबर लगा रही थी, जाहिर था कि उन कैसेट्स में बयान रिकार्ड किये जाते होंगे। वहां सीडीज़ सिस्टम भी पड़ा हुआ था। यह भी सबकुछ अदालती कार्रवाई के लिए ही था। जज के बायीं ओर निचली तरफ 12 लोगों की ज्यूरी बैठी हुई थी। सभी के हाथों में नोट बुक थी। यह ज्यूरी लोगों में से चुनकर बनाई जाती है। यह अपना फैसला जज को देती है। आगे जज इसका फैसला सुनाता है।

इस समय बीस वर्षीय एक अंग्रेज लड़के के बयान दर्ज हो रहे थे। उसके आगे माईक पड़ा हुआ था। जरूरत पड़ने पर वह इस्तेमाल कर सकता था, पर कोई प्रयोग नहीं कर रहा था। जज के आगे भी और वकीलों के आगे भी, छोटे-छोटे माईक थे। जज लाल रंग की कुर्सी पर बैठा हुआ था। वह किसी की ओर झांकता नहीं था।

मुझे याद आया, हमारे फरीदकोट कचहरी में एक जज साहब होते थे, जब वकील बहस करते थे तो जज साहब उनकी ओर देखते रहते और पैन के पिछले हिस्से से अपनी नाक पर खुजली करते रहते थे। जज साहिब पूरी कचहरी में नाक में पैन मारने वाले जज के तौर पर मशहूर हो गये थे। परंतु अंग्रेज जज अपने लिखने वाले कागज़ों की ओर ही देख रहा था। कभी-कभी वह बयान दे रहे लड़के से बीच-बीच में कुछ पूछता और नोट कर लेता था। सभी के सामने पानी के गिलास रखे हुए थे। बयान देने वाला अंग्रेज युवक बार-बार रबड़ के गिलास से पानी के घूंट भरता। कभी थोड़ा खंखारकर गले को साफ करता। कभी पैंट ऊपर उठाता। कभी पैंट की जेबों में हाथ डालता और फिर साथ ही हाथ निकालकर बगलों में दबा लेता।

अपनी बातें बताता-बताता वह बीच-बीच में मुस्कुरा भी पड़ता। जब उसके गिलास से पानी खत्म हो गया तो पास ही खड़ा अशर, अर्दली को यहां अशर कहते हैं, जिसने काला कोट पहना होता और टाई भी लगी होती है, वह फलां सिंह बनाम ढिमकाना सिंह हाज़िर हो की आवाजें नहीं मारता, लिस्ट से नाम पढ़कर तय समय पर पेशी करवाता है। अदालती कार्रवाई के समय कागज़ों पत्रों की इधर-उधर और वकीलों और अदालती स्टाफ की लेने-देने में भी सहायता करता, ना ही वह जज की कोठी में रोटी पकाता और गाय-भैंस का गोबर साफ करता। वह तो जज की तरह तय समय पर अदालत में आता है और अपने घर जाता है। मैं भारत की अदालतों के अर्दलियों के बारे में सोचता रहा, खाकी पैंट कमीज़ होती थी और पैरों में घिसी हुई चप्पलें, यहां अशर का रूतबा जज के बराबर का था, यहां ना तो अर्दली किसी साहब की घंटी सुनता है और ना ही कोई साहब घंटी बजाता है। सब आत्मनिर्भर हैं, जज अपनी कार चलाकर आता है, और हमारे देश में कितने ही लोग घंटी सुनने के लिए रखे हुए हैं। एक-एक साहब के पास पांच-पांच अर्दली? क्या तरक्की करेगा इंडिया?

खैर...! बात लंबी ना करूं। अशर ने बयान दे रहे युवक को जग से पानी का गिलास भर कर दिया।

यह केस सैक्स से संबंधित था। इस लड़के के साथ कुछ साल पहले एक आदमी ने जबरदस्ती की थी। एक आदमी भी पुलिस वाले ने अपने पास बिठाया हुआ था, जो मुजरिम लग रहा था। उसकी उम्र साठ से ऊपर थी। लड़के की मां का बयान भी हुआ। उसने अपने बयान में बताया कि वह अपने पति से जुदा होकर अकेली रह रही थी। वह अपने दो बच्चों को पाल रही थी। उस इंसान से उनका पारिवारिक रिश्ता था। नजदीकी रिश्तेदारी भी थी। एक दिन उस आदमी ने लड़के को अकेला देखकर उससे रेप किया। लड़के के वकील ने पूछा कि उसने उसके साथ किस तरह की हरकत की थी? तो लड़के ने अपने सिर के बालों पर उंगलियां फेरनी शुरू कर दी और फिर वह उंगलियों को अपनी पीठ तक फेरते हुए ले आया था। लड़के ने उसी तरह अपनी पीठ पर उंगलियां फिराकर पूरा विवरण विस्तार से बताया।

अदालत में हाजिर वकील और ज्यूरी सभी लोग ही इस केस को बड़ी

गंभीरता और एकाग्रता से सुन रहे थे, उसी समय अदालत काम्प्लैक्स के पिछवाड़े लगे पेड़ों में से एक कोयल की दर्दभरी आवाज सुनी। जैसे वो तड़फ रही हो। मुझे लगा कि जैसे उस कोयल से विलायत में बहुत बुरा हुआ है, वह इंसाफ मांगती तड़फ रही है और अदालत में आने के लिए कोई दरवाजा ढूंढ रही है। अदालती कार्रवाई अभी चल रही थी, हम उठ गये।

-----------

**काश भारत में भी ऐसे डे-सैंटर बनवाये जाते...**

एक दिन रविवार को उप्पल कहने लगे कि तुम्हें यहां डे-सैंटर में लेकर जाना है, जो अपने घर से पैदल पंद्रह मिनट की दूरी पर है। यह डे-सैंटर साउथहॉल की शैक्लिटन रोड पर है। सरकार ने यह स्थान बुजुर्गों के लिए बनाया है, यह एशियन लोगों के लिए है। ऐसे सैंटर यहां और भी हैं, अलग-अलग स्थानों पर, अलग-अलग समुदायों के लोगों के लिए। डे-सैंटर में बुजुर्ग रोजाना आकर बैठते हैं और गपशप मारते हैं। यहां बड़े-बड़े अंतर्राष्ट्रीय मसलों से लेकर छोटे-छोटे घरेलू मसले पर भी विचार किया जाता है। बुजुर्ग बातें करते हैं। कोई कहता है–'रात ज्यादा ही हो गई, सुबह को उठा ही नहीं गया, आज नहीं पीयूंगा।' पास बैठा कोई चटकारे लगाता है–'कोई पीछे थोड़े पड़ा था, थोड़ी पी लेते, मुफ्त की आई होगी कहीं से।' यूं ही यह बुजुर्ग एक-दूसरे का मजाक करते रहते।

इस सैंटर की एक ब्रांच वैस्टर्न रोड पर बनी है। यहां डे-सैंटर में बुजुर्गों की सदस्यता दो हजार के लगभग है। रोजाना यहां लगभग 100 बुजुर्ग आते हैं। आते ही चाय व बिस्कुट मिलते हैं, सुबह व शाम दोनों वक्त। पंजाबी, हिंदी, गुजराती भाषा की अखबारें टेबल पर पड़ी होती हैं। कुछ पत्रिकायें व साहित्यिक किताबें भी दिखाई देती हैं। कई अपने-आप में मगन हुए कुछ-न-कुछ पढ़ रहे हैं, किसी की बात की ओर जरा सा भी ध्यान नहीं। मैंने देखा कि कुछ बुजुर्ग बैठे अपने दुख-सुख बांट रहे हैं। कुछ पंजाब के बारे में चर्चा कर रहे हैं। राजनीति की चर्चायें छिड़ी हुई हैं, कोई कैप्टन अमरिंदर सिंह को कलगी लगा रहा है, कोई बादलों के। बीच-बीच में बहस भी करने लगते हैं और पल में बच्चों की तरह और फिर एक-साथ। यूं ही तो किसी ने नहीं कहा बच्चे-बूढ़े एक समान होते हैं! कुछ टीवी देखते हैं। बहुत कम कीमत पर यहां खाना भी मिल जाता है। जो घर से नहीं खाकर आते, यहां खा लेते हैं। हर

मंगलवार को यहां मनोरंजन के लिए सुबह के समय दो घंटे कार्यक्रम होता है, जिसमें यह खुद ही चुटकुले, गीत, कविता आदि सुनाते हैं और खूब हंसी-मजाक करते हैं।

जो बुजुर्ग अंगहीन हैं, उन्हें कौंसिल की वैन घर से उठाती है और घर पर ही उतारती है। यह विभाग बुजुर्गों की पेंशन, डाक्टरी सुविधाओं और स्वास्थ्य के बारे में जानकारी देता रहता है। दो सप्ताह बाद बुजुर्गों का वजन व ब्लड-प्रैशर चैक किया जाता है। इनके स्टाफ सदस्यों की संख्या मुख्य मैनेजर संतोश कंवर समेत 12 है। बुजुर्गों को विभाग समुंदर किनारे व अन्य रमणीक स्थानों पर टूर पर लेकर जाता है।

जिस दिन हम वहां गये, मंगलवार था, और मनोरंजन का कार्यक्रम होने वाला था। अवतार उप्पल ने मैनेजर को मेरे आने से पहले ही बताया हुआ था कि भारत से आया एक पंजाबी युवक बुजुर्गों का मनोरंजन करेगा, उस दिन बुजुर्ग अपने कार्यक्रम का प्रदर्शन कम ही करेंगे। उसने साऊंड सिस्टम का प्रबंध भी करवा लिया था और कुछ बुजुर्गों और अपने साथियों को विशेष तौर पर पहुंचने के लिए फोन भी कर दिया था। हाल ठसाठस भर गया और कुर्सियों के लिए जगह ही नहीं बची। मुख्य मेहमान समेत पूरा स्टाफ बुजुर्गों के बैठने के लिए भाग-दौड़ कर रहा था। मैंने देखा कि विख्यात लेखक प्रीतम सिद्धू भी वहां पर बैठे थे, वह भी इस सैंटर के सदस्य हैं और रोजाना की तरह वैन उन्हें लेने और छोड़ने जाती है। जब मैंने उनके पास जाकर सत श्री अकाल बुलाई तो उन्होंने कहा, 'मैं तुम्हें बहुत मुश्किल से पहचाना है, तुम पहले से बहुत मोटे हो गये हो।'

हम पांच साल बाद मिल रहे थे। बातचीत कर रहे थे कि इतने में लेखक शिवचरण गिल भी वहां आ गये। वह भी रोजाना की तरह वहां आते थे। 'नवां जमाना' में काम करते रहे सरवन ज़फर भी वहां आ गये, जिनके कुछ लेख मैंने नवां जमाना में पढ़े थे। अवतार उप्पल ने मेरी प्राथमिक जान पहचान करवाई तो मैनेजर ने भी स्वागत के बोल बोले। मैंने यहां तूंबी के साथ गाना भी था और कुछ बातें भी सुनानी थी। सो, सैंटर की ढोलकी किसी महिला ने टेबल पर पहले ही लाकर रख दी थी। अभी कार्यक्रम शुरू ही हुआ था कि बुजुर्गों को चाय के साथ केक, पकौड़े और समोसे बांटे जाने शुरू हुए। मैंने देखा कि कुछ बुजुर्ग तो खाने वाली वस्तुओं पर ऐसे टूट पड़े मानो कितनी भूख के सताये

हों। जब शोर थोड़ा ऊंचा हुआ तो अवतार उप्पल ने उठकर सभी को विनती की कि खाने-पीने का काम बड़े आराम से किया जाये और आज बातें ना ही की जायें। सो, एक बार फिर से चुप्पी पसर गई। मैंने कुछ बातें जज के अर्दली और कोर्ट वाली रटी-रटाई और कुछ अन्य हंसी-ठट्ठे की सुनाई, तो इतने में ढोलकी पर साथ देने के लिए प्यारा सिंह सैहबी आ गया, जो खुद भी कलाकार है। सो, ढोलक पर सैहबी ने जब ताल दी तो एक महिला ने नजदीक पड़े छैने उठाकर सुर से सुर मिलाया। इतने से तुंबी को आसरा मिल गया, सुंदर साज़ के मिल जाने से कुछ बात सी बनती लगी। अब सभी बुजुर्ग हमारी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। मैं पुराने लोकगीत 'वे लिआदे चंबा लावां घड़े दे कोल' और कुछ लोक गाथायें गायी तो बुजुर्गों के लिए आज्ञाकारी 'श्रवण बेटे' की गाथा गानी भी जरूरी समझी। समय कुछ ठहर सा गया था और श्रवण की गाथा सुनकर कई बुजुर्गों की आंखों में आंसू भी आ गये। तुंबी की टनकार बजते ही बुजुर्ग ने मेरे सामने रखी मेज पर पौंड रखने शुरू कर दिये, यह पौंड वह मुझे हौंसला अफ़जाई के तौर पर इनाम स्वरूप दे रहे थे। एक घंटे के करीब कार्यक्रम चला। अवतार उप्पल ने स्पीकर पर सभी का धन्यवाद करते हुए कहा कि आज सभी के खिले चेहरे और बागो-बाग देखकर बहुत खुशी हुई है। अब हॉल में फिर खुसर-फुसर ऊंची होने लगी और अंत में प्रीतम सिद्धू ने भी कुछ शब्द कहे।

मैंने महसूस किया कि यदि भारत में भी इस तरह बुजुर्गों की सेवा-संभाल और देखभाल के लिए हमारी सरकार डे-सैंटर बनवाये और अच्छी सहूलियत वाली नीतियां बनाये तो कितना अच्छा होगा! सड़कों और गलियों पर मारे-मारे ना फिरें हमारे बुजुर्ग। मैंने यह भी महसूस किया कि यह बुजुर्ग यहां एक तरह स्वर्ग में रहते हैं, मुफ्त स्वास्थ्य सेवायें, पैंशन, मुफ्त ट्रांसपोर्ट और अच्छा खाना-पीना और पहनना। इसीलिए इनके मन इतने खिले और प्रसन्न होते हैं। हमारे इंडिया में बुजुर्गों का जो हाल है, उसके बारे में जानकारी देना यहां फालतू की बात लगती है। सभी को भली-भांति पता है कि बुजुर्गों के लिए शुरू की गई पंजाब सरकार की पैंशन सुविधा का लाभ नौजवान ही, कागज़ों पर बूढ़े होकर लेते रहते हैं। कई मरे हुए लोगों की पैंशन भी डकार रहे हैं। एक बात और, वह यह कि कुछ बुजुर्ग स्वभाव गर्म होने के कारण अपने घरों में भी बेटियों-बेटों से बहसबाज़ी करते रहते हैं और यहां सैंटरों में भी अपने साथियों से थोड़ी

बहुत तल्ख कलामी कर ही जाते हैं। वह उनके बस की बात नहीं होती। यह सैंटर सुबह नौ बजे खुलता है और साढ़े पांच बजे बंद होता है। आमतौर पर बुजुर्ग अपने-अपने घरों से बस पर चढ़ कर आ जाते हैं और कईयों के बेटे-पोते छोड़कर जाते हैं। सारा दिन बुजुर्गों का मेला लगा रहता है। अच्छा समय बीतता है इनका।

# विलायती पाठक और लेखक

विलायत और अन्य देशों से इंडिया बहुत से ऐसे पाठकों-लोगों के फोन मुझे अकसर ही आते रहते हैं, जो मुझसे मेरी किताबों के बारे में पूछते हैं कि कहां से मिलती हैं। इस यात्रा के समय मैंने अपनी कुछ नई छपी और कुछ पुरानी किताबें जहाज द्वारा कोरियर कर दी थी कि वहां उसका इस्तेमाल कर लूंगा और यात्रा के दौरान हुआ मेरा कुछ खर्च इससे वापिस आ जायेगा। तकरीबन बारह हजार रुपये किताबों के कोरियर का खर्चा आया और किताबों को खरीदने में पैसे अलग लगे। परंतु उस दिन मैं हैरान ही रह गया कि मेरी किताबें उम्र-दराज लोग ऐसे उठाकर ले गये जैसे शरारती बच्चे सड़क पर लावारिस आम उठा-उठाकर जेबों में डाल रहे हों! वहां खड़ा हुआ मैं क्या गूंगा था? अंधा था कि मुझे दिख नहीं रहा था? क्या मैं बहरा था जो मुझे सुनाई नहीं दे रहा था। किसी ने पूछने की गलती नहीं की कि कितने की किताब है? क्या वह किताबें सचमुच लावारिस थीं? ठेके पर जाकर शराब की बोतल लेने के लिए हम कैसे पर्स खोल लेते हैं और किताब खरीदते वक्त भोले से बच्चे की तरह जिद करते हैं। यदि हमारे पंजाबियों में यह बुराई ना होती तो पंजाबी के महान लेखक भूखे नहीं मरते। मैंने सबक सीख लिया था, तौबा...तौबा...तौबा! आगे से कभी अपनी किताबें नहीं लाऊंगा! मुझे क्या गर्ज़ पड़ी है कि पहले लिखूं, कितनी-कितनी बार संशोधित करूं, फिर छपवाऊं, फिर पैसे खर्च कर इतनी दूर लाऊं और लोग मुफ्त में उठाकर बेकदरी करें।

कई लोग किताबों को यूं घूरते देखे हैं जैसे भैंस खरीदने आया व्यापारी भैंस के थन देखता है कि कितना दूध देती होगी? भैंगी तो नहीं, सिर तो नहीं झटकाती, वगैहरा-वगैहरा परंतु 'भैंस और किताब' में बड़ा फर्क होता है प्यारो!

कई दिनों की उदासी दूर हुई रास-रस के लेखक इंदरजीत सिंह जीत के घर वुलवरहैंपटन आकर। जीत चुटकलों का बादशाह है। उदास होने नहीं देता। माता ऊषा जीत का स्वभाव हंसी-मजाक वाला और रौनक वाला है।

चुटकले व हास्य-व्यंग्य इकट्ठे करता हुआ जीत अपने मैग्जीन 'असली पंजाबी मीरज़ादा' का मैटर जोड़ता रहता है। उसने किताबों से संबंधित कई टोटके सुनाये और साथ ही उसने बताया कि मुफ्त में ले गया कोई इंसान किताब नहीं पढ़ता, जो खरीदेगा वही पढ़ेगा। जीत की यह बात बहुत हद तक सच्ची है, वह कहने लगा कि मैंने एक को अपनी किताब भेंट की, कुछ महीनों बाद मिला तो पूछा कि किताब पढ़ी है? उसने कहा कि किताब पढ़ने की फुर्सत कहां है दोस्त? यहां विदेश में तो मरने की भी फुर्सत नहीं।

-----------

बर्मिघंम में हास्यरस शायर तेजा सिंह तेज कोटले वाले के घर जब आंख खुली तो आंगन में चहक रही चिड़ियों की आवाज़ ने कई तरह की मिली-जुली झांझर की छनकार सा संगीत पैदा कर दिया। हमारे गुरुओं ने क्या सुहावना लिखा हैः

**चिड़ी चहुकी पहु फुटी**
**वगण बहुत तरंग**

गुरबानी के साथ-साथ उस समय मुझे अपने गांव की सुबह और उस अनदेखी चिड़िया की बहुत याद आई, जो गुरुद्वारे के भाई के जागने से पहले ही मेरे चौबारे की एक दीवार पर आकर बैठती है और ऐसी अत्यंत सुरीली तान छेड़ती है कि आकाश की छत्त के नीचे लेटा हुआ जब भी आंख खोलकर उसे देखने लगता हूं तो पल ही पल में वह फुर्र से उड़ जाती है। मुझे लगता है कि वह चिड़िया काले रंग की है। उसे सुबह के समय चहकते हुए एक साल से भी अधिक का समय हो गया है। मैंने इससे पहले किसी अन्य चिड़िया को यूं गाते नहीं सुना है। मेरी मां भी उस चिड़िया से बहुत खुश है, वह बताती है, 'जब सुबह चिड़िया चहकने लगती है तो मन जैसे तरंग से भर जाता है...जिस दिन सुबह-सुबह बारिश या आंधी आई, मैं उस दिन सोचने लगी कि पता नहीं बेचारी कहां होगी? उस दिन क्यों आती वो, दूसरे दिन अपने बंधे हुए समय पर फिर आ गयी।'

तेजा सिंह के बरामदे में कई तरह की चिड़िया चहचहाती पंख फड़फड़ा रही थीं। उसने आंगन में बंधी एक तार से मूंगफली की गिरी, गेहूं और बाजरे के दाने बांध कर टांगे हुए थे, तीन चिड़िया मूंगफली को चोंच मारती, उसका कुछ हिस्सा नीचे गिरता और चार-पांच काली चिड़िया नीचे गिरा वह हिस्सा

खाती...अजब संगीत नज़ारा! आसमान से हल्की सी फुहार, आसपास फूलों के गमले, ऊंचे हरे-भरे पेड़ और बेलों का जमघट, बहुत याद आई गुरु की बानीः

**बलहारी कुदरत वसिआ**
**तेरा अंत ना जाई लखिआ**

जब तेजा सिंह तेज जोर से ठहाका मार कर हंसा करे तो मैं कहता कि ना भाई, इतनी जोर से मत हंसो, हंसती-गाती चिड़िया उड़ जायेंगी! कमलजीत नीलों कितना प्यारा गाता हैः

**चिड़िये वे, चिड़िये बाबुला चिडिआ**
**विहडे दे विचों उड़ जाणीआ...**

सोचता हूं कि हमारे भारत में लोगों को प्रकृति से मोह क्यों नहीं? हम धड़ा-धड़ पेड़ काटते जा रहे हैं, पंछी जायें तो जाये कहां? हमने अपने घरों (तीन-तीन मंजिला कोठियों) में रोशनदान बनाने बंद कर दिये तो बेचारी चिड़ियां, तकदीर की मारी जायें तो आखिर जायें कहां? हम प्रकृति से कायनात की ओर से बेमुख हो कर जैसे अंधेरे में ही गहरे में गर्क होना चाहते हैं। जब हम प्रकृति से खिलवाड़ करते हैं तो वह क्रोधित होती है, जैसे इंसान के मन को किसी बात से दुख होता है, बिलकुल प्रकृति को भी जरूर लगता होगा? देखता हूं और सोचता हूं कि विलायती लोग कितने अच्छे हैं, जिन्होंने प्रकृति, पवन-पानी, पेड़, आसपास और पंछी कितने प्यार और मोह से संभाले हुए हैं, क्या कभी हम इन लोगों से कुछ सीखेंगे?

# नकारी किताबें!

सोचता था कि कभी भी, कोई भी किताब नकारा नहीं होती! यह बात अलग है कि किताबें छप रहीं है फटाफट...फटाफट..., स्तरहीन और बे-तरतीब किताबें ढेरों के ढेर! पढ़ने के लिए कम और रखने और मुफ्त बांटने के लिए ज्यादा। समझदार-समझदार लोग निकम्मी किताबें लिख-लिख रखते जा रहे हैं, परंतु नकारी किताबों के बारे में मुझे तब पता लगा जब मैं डर्बी में रहने वाले सिख विद्वान और ढाडी रहे गि. निंरजन सिंह नरगिस के साथ उनके घर के नजदीक पिर-टिरी लाइब्रेरी में चक्कर लगाने चला गया। पंजाबी की कुछ किताबें एक कोने में लगे टेबल पर रखी हुई थी, जो लाइब्रेरी में पढ़ने के लिए किसी पाठक ने एक बार भी इश्यू नहीं करवाईं और अंत में हारकर लाइब्रेरी वालों ने इन्हें नकार दिया है। मैं बड़ी हैरानी और बैठे दिल से इन किताबों को देखने लगा। वो किताबे थीं, 'वासना व्हिस्की और विद्वता'-(खुशवंत सिंह), 'खुदा की कसम'-(मंटो), 'ध्रुव तारे'-(गुलजार सिंह संधू), 'दूध के दरिया'(कुलबीर सिंह कांग), 'हड्डियां'-(राम सरूप अणखी), 'मास्टर तारा सिंह के लेख', 'मेरीयां सदीवीं यादां'-(नानक सिंह), 'रेते दी इक मुट्ठी'-(गुरदिआल सिंह), 'झाड़ियां दे फुल्ल'-(संतोख सिंह धीर), 'पंजाबी विश्व कोष'-(भाषा विभाग पंजाब)।

मेरे साथ खड़े गि. नरगिस ने बताया कि उन्होंने इस तरह की कई नकारी (उच्चकोटि साहित्य) किताबें यहां से कई बार ली हैं। उन्होंने कहा कि मैंने अब छह किताबें ली हैं...दस पैनी की एक किताब है और कुल साठ पैनी बनी, एक पौंड से भी कम, इस हिसाब से यहां यह किताबें इंडिया वाले रेट से बहुत कम में मिल गई, क्या बुरी हैं?

हम अभी खड़े ही थे। वहां एक अन्य लेखक केसर रामपुरी आ गये। नरगिस जी के हाथ में संतोख धीर की किताब और भाषा विभाग का कोष देखकर कहने लगे, 'आप ठगी मारकर ले चले हो, यह तो मैंने लेकर जानी थी?' उन्होंने हमारे देखते-ही-देखते खुशवंत सिंह और कांग की किताबें

हाथ में पकड़ी और काम करने वाली लड़की को बीस पैनी पकड़ा कर चलते बने। मैं और ज्ञानी नरगिस अपनी किताबें लिफाफे में डलवाकर घर की ओर चल पड़े। मैं सोचता आ रहा था कि कभी मेरी किताबें भी यूं ही नकारा होंगी?

----------

यात्री की स्थिति भी अजीब तरह की होती है, कई यात्रियों को तो अपनी यात्रा पर निकलते, कुछ घंटों में ही अपने मन की दिशा बदलती हुई प्रतीत होती है। मैं जब भी विदेश को निकलता हूं तो शुरू-शुरू के दिनों में मन की एकाग्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है, बेगाने के बस में हो जाने के कारण दिनचर्या ही बदल जाती है, लिखने-पढ़ने को मन नहीं मानता, इसी दौरान 'अपनी' सुनाने वाले भी बहुत मिल जाते हैं, 'ज्यादा बातें' सुनाने वाले लोगों को मिलकर महसूस करता हूं कि यह बेचारे जैसे लंबे समय से बातों की गठरियों से गले तक भरे पड़े हैं, जैसे इन्हें कभी कोई श्रोता मिला ही नहीं? सच्ची बात है, किसी के पास वक्त नहीं है यहां! बातों से ऐसे गले-गले तक भरे लोगों के हत्थे चढ़ जाता है मेरे जैसा यात्री तो वह खुल-डुल जाते हैं, बातों के ताने-बाने उधड़ते चले जाते हैं, मैं ऐसे लोगों की मानसिक अवस्था को समझते हुए इनका हमदर्द बन बैठता हूं। सुनता रहता हूं। ऐसे लोगों में बहुत से 'कवि' सज्जन भी मिल जाते हैं।

मैं कवियों की कवितायें सुन-सुनकर बहुत तृप्त हो गया हूं इंग्लैंड की धरती पर आकर! हर घर में कवि है। हर गली, हर मुहल्ले और मोड़ पर कवि है। एक कवयित्री ने घर बुलाया है। बहुत से चाव और उत्साह में उस कवयित्री ने एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, बल्कि अपनी दर्जनों कवितायें और गज़लों से निहाल कर छोड़ा, जब उसके घर से चलने लगा तो कहने लगी, 'ठहरो...जरा ठहरो, मेरा डॉगी तो देखते जाओ।' शेर जैसा...बड़े मुंह, लटके हुए कानों और चौड़े नाक वाला 'बुढ्ढा कुत्ता' था, मुझे लगा कि बस अभी खा ही जायेगा, कुत्ते ने पैर पर जीभ फेरी। मैंने कवयित्री को कहा, 'बस...बस...अब मेरा मुंह ही ना चटा देना, मेरी इंग्लैंड यात्रा सफल हो गयी है, आपके घर आकर।' सभी हंसने लगे।

----------

दो-तीन दिन बहुत बेचैन-सा रहा हूं। यहां महाराजा रणजीत सिंह, रानी जिंदा और महाराजा दलीप सिंह बहुत याद आये। बार-बार याद आये। इस

याद  का संयोग बना डर्बी के नजदीक एक गांव बार्टन में रहता पाठक और मित्र अवतार शेरगिल। जब कार में उनके साथ जा रहा था तो उन्होंने ढाडी दया सिंह दिलबर की वह कैसेट लगा दी, जो सन 1975 में उनके इंग्लैंड यात्रा के समय वुलवरहैंप्टन के किसी गुरु घर में शेरगिल के किसी नजदीकी रिश्तेदार दर्शन सिंह मट्टू ने रिकार्ड की थी, और चार-पांच घंटे के लगभग महाराजा रणजीत सिंह, महाराज दलीप सिंह और रानी जिंदा का इतिहास संगतों ने एक मन होकर सुना था। औ...हो...हो...हो...! दिलबर का भाषण मंत्रमुग्ध करने वाला है, कमाल भरा, बहुत दिलचस्प, एक-एक बोल निखरा और संवरा हुआ, तीखी और प्रभावी आवाज़! मन को गहरी ठेस पहुंची, 'रानी तो भीख मंगा...नीं तू की कित्ता तकदीरे...।' जब रानी जिंदा चनार के किले में कैद रात को बैठे हुए तारों भरे आकाश की ओर देखती है तो एक तारा टूटता है, रानी का दिल भी टूट जाता है। वह गहरी सांस लेती है, खुद रो लेती है, खुद ही चुप कर जाती है। वृत्तांत वर्णन मन लुभावना और दर्दीला है। यूं लगता है कि मैं उस समय में ही जा पहुंचा हूं। यह हमारे महान कलाकारों की कला का जादू नहीं तो और क्या है? यह पंक्तियां लिखते समय मैं एक घर में अकेला और बहुत उदास बैठा हूं।

विलायत यात्रा के दौरान वहां के बहुत से साहित्यिक समारोहों में जाने का अवसर मिला। मैंने महसूस किया कि समारोहों में पाठक बेशक ना आये परंतु लेखक बेचारे दूर-दूर तक, खराब मौसमों में भी जोशो-खरोश से पहुंचते देखे। कवियों के बगल में मोटी-मोटी भारी-भारी पांडुलिपियां होती थी! एक कवि सज्जन को मैं पूछ बैठा कि कविता तो आपने एक ही पढ़नी हैं तो यह इतना बोझ उठाने का क्या फायदा? उसने हंस कर कहा कि क्या पता दूसरी बार या तीसरी बार भी कविता पढ़ने का दाव लग जाये! दाव शब्द सुनकर मैंने हंसना चाहा परंतु काफी लोग खड़े थे, मैं अपनी हंसी अपने अंदर ही दबा गया।

मैंने यह भी महसूस किया कि सुनने की बजाय हरेक 'अपनी' सुनाने के लिए बहुत बेचैन दिखाई दे रहा था। मैंने सोचा कि यदि यह साहित्यिक समारोह विलायत में ना होते तो 'कवि बेचारे' कहां जायें? घर पर तो इनकी कवितायें सुनते नहीं। वक्त है किसके पास? अच्छा पक्ष यह लगा कि इन देशों

में वक्त की कमी के बावजूद भी साहित्यिक समारोहों में अच्छे लोग जुड़ जाते हैं। विलायत के साहित्यिक समारोहों में खाने-पीने की वस्तुयें देखकर मुझे फरीदकोट की साहित्य सभा याद आती, जहां मैं ज्यादातर जाता रहता था। भंग भूनी होती थी। छोटे-छोटे बिस्कुट होते और छोटे-छोटे गिलास में एक घूंट में ही खत्म हो जाने वाली चाय के बाद कई सज्जनों को और चाय पीने की चाहत होती। धीरे-धीरे पदाधिकारी पांच-पांच रुपये इकट्ठे करके चाय वाले को नकद दे देते थे। लेखकों को उधार देने से चाय वाला कन्नी कतराता था।

विलायत के साहित्यिक समारोहों और बैठकों में देखकर हैरानी और तसल्ली हुई कि चाय, पकौड़े, समोसे, जूस, कोक, कॉफी साथ-साथ और समारोह के अंत में पहले बीयर उसके बाद फेमस ग्राऊस व्हिस्की जी-भरकर बांटी जाती। उसके बाद दाल और मीट के साथ रोटी। मैंने देखा कि विलायती लेखक घूंट-घूंट पीकर दुख-सुख बांटते हैं, ताने देते-लेते हैं और थोड़ी देर बहस भी कर लेते हैं और अपना-अपना गुबार भी निकाल लेते हैं। ऐसे अवसरों पर ही लेखक सज्जन एक-दूसरे से ईमेल का आदान-प्रदान करते हैं और नये फोन नंबर नोट करवाते हैं। किताबों को भेंट करते हैं और बांटते भी हैं। मुंह पर एक-दूसरे की तारीफ के खूब पुल बांधते हैं परंतु वह शख्स जरा-सा दूर हुआ नहीं, एक-दूसरे की जमकर बेइज्जती करते हैं। लेखक लोगों में एकता और सद्भावना कम जगहों पर ही देखने को मिली। एक-दूसरे को देख-देख कर कुढ़ना और सौतनों की तरह बुड़-बुड़ करते भी देखा उन्हें। मैं बहुत हैरान हुआ कि यही इंसान अभी उसके मुंह पर उसकी तारीफ करके, उसे आसमान पर चढ़ाये जा रहा था और अब पल में ही जमीन पर ला पटका था।

समारोहों के दो या तीन पड़ाव होते हैं। आम समारोह दोपहर को शुरू होते हैं और देर रात तक चलते हैं। मुझे कवैंटरी की साहित्य सभा के समारोह बहुत अच्छे लगे। बहुत हिम्मती लेखक और प्रबंधक हैं कवैंटरी वाले। बैठकें भी ज्यादातर शाम के समय होती हैं। समारोहों के भिन्न-भिन्न पड़ावों में पुस्तकें रिलीज़ की जाती हैं। पर्चे भी पढ़े जाते हैं। बहस भी होती रहती है। कवि दरबार भी होते हैं। गीत-संगीत भी चलता रहता है। मैंने देखा कि ज्यादातर कवि तो अपनी कविता पढ़ने तक ही सीमित होते हैं, उनका जैसे दूसरे सैशनों से कोई वास्ता ही नहीं होता हो। वह अपनी कविता सुनाकर भागने के लिए तड़प रहे होते हैं।

एक और बात जो मैंने महसूस की कि मैंने बहुत से विलायती लेखकों के पास पंजाब रहने वाले बहुत प्रसिद्ध लेखकों और उनकी बहुचर्चित रचनाओं की बात की तो वह उनसे बिलकुल ही अंजान थे। जब किसी खास इंसान के पास जाकर मैंने यह बात की तो उसका कहना था कि उनके पास तो पंजाब का साहित्य पहुंचता ही नहीं...वह कहां से पढ़े? फिर मैं कहता कि आपके दूसरे साथी भी तो हैं? वह कहां से पढ़ते हैं? वह क्यों अंजान नहीं? वह पंजाब के साहित्य और साहित्यकारों के साथ लंबे समय से कैसे वास्ता रख रहे हैं? फिर इस बात का उनके पास कोई ठोस जवाब नहीं होता था।

विलायत में बहुत भांति-भांति के लेखक रहते हैं, जिन्होंने साहित्य की अलग-अलग विधाओं पर कलम आजमाई है। नव प्रसूता भैंस जैसी तंदुरुस्त पुस्तकें लिखी और छपवाई हैं। कईयों को भाषा विभाग पंजाब सरकार की ओर से 'शिरोमणी प्रवासी लेखक' वाली कलगी लग चुकी है और कई लगवाने के लिए प्रयासरत हैं परंतु अभी लाइने व्यस्त हैं! कुछ लेखक हर वर्ष पंजाब जाते हैं। किसी का रू-ब-रू होता है। किसी की किताब पर गोष्ठी रचाई जाती है। किसी का मान-सम्मान होता है। उनसे बढ़िया रौनक मेला सा लगा रहता है। कोई किसी यूनिवर्सिटी का चक्कर भी लगा लेता है कि शायद उसकी किसी रचना पर शोध-कार्य हो जाये तो रचना का मोल भी बढ़ जाता है। इतने से ही लेखक का पंजाब का चक्कर और दिलचस्प हो जाता है। पंजाब से गये कलमकारों का मान-सम्मान और सेवा-टहल करने से विलायती लेखक कन्नी नहीं कतराते, पर उनका दिल तब टूट जाता है, वह पंजाब आते हैं तो विलायत में सम्मानित हुए वह लेखक को चाय का एक कप भी कोई नहीं पूछता, खाना तो बहुत दूर की बात है।

साऊथहाल में हरजीत अटवाल के घर एक साहित्यिक एकत्रता हुई। पंजाब से गई एक प्रोफेसर मुख्य मेहमान थीं। चर्चा हो रही थी जालंधर वाले जिंदर की कहानी कला के बारे में। एकत्रता में बैठा बुजुर्ग लेखक संतोख सिंह संतोख कहने लगा, 'जिंदर तो इंडिया में बैठा है, कहानी के बारे में चर्चा यहां हो रही है, यह चक्कर-वक्कर क्या है? क्या और ऐसा लेखक लंदन में नहीं, जो इस एकत्रता में मौजूद भी हो और उसकी कहानी के बारे में बात चले। पंजाब से महिला लंदन आई है और पंजाब के एक लेखक की कहानी के बारे

में बात कर रही है, यह बात समझ से परे है, हां या फिर पंजाब की समूची कहानी के बारे में चर्चा होती। '

संतोख जी की बात का जवाब किसी के पास नहीं था। खैर! अटवाल के पूरे परिवार ने घर आये लेखकों की जितने स्नेह और अपनेपन से सेवा की, यह देखकर मेरी थकावट दूर हो गई। मैं सीधा बर्मिंघम से तीन घंटे बस में बैठकर आया था। पैग लगाकर लेख सज्जन, किसी निराले संसार में पहुंच चुके थे। ज्ञान-गोष्ठि होने लगी, फोटो खिंचने और खिंचवाने में कैमरे रौशन हो उठे। काफी अंधेरा पसर गया था और साथ ही जोर से बारिश भी है, विलायती लेखकों के मोह ने मेरा मन मोह लिया था।

# कैलाशपुरी के आलिंगन में

लंदन में रहने वाली कैलाशपुरी ने सैक्स जैसे नाजुक विषय पर बहुत सफल और बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी हैं और इस संबंध में लिखे उनके लेख आम ही इधर-उधर छपते रहते हैं। किसी समय लंदन की साहित्यिक सरगर्मियों में उसका ही बोलबाला था। जब उनके पति गोपाल सिंह पुरी चल बसे तो उनकी आने-जाने वाली साहित्यिक सरगर्मियां तो कुछ कम हो गई परंतु लेखन का कार्य कुछ और तेज हो गया।

मैं लेखक गुरपाल सिंह के पास साऊथहाल गया था, वह कैलाशपुरी की बात करने लगा। बातों-बातों में हमारा कार्यक्रम उन्हें मिलने जाने का बन गया। उसने फोन उठाया, डायरी छान मारी और नंबर डायल कर दिया। रस्मी बातचीत के बाद मेरे बारे में बताया और अगले दिन एक बजे आने का कार्यक्रम पक्का किया। गुरपाल ने बताया कि वह एक शानदार और महंगे फ्लैट में रहती है। नब्बे वर्ष की होने वाली है और दिल से अभी भी जवान है। गुरपाल के घर से तकरीबन बीस मिनट की ड्राइव थी। वाकई बहुत महंगे और साफ-सुथरे इलाके में रह रही थी। बड़े, सुंदर और खुले फ्लैट थे। आस-पास लंबे पेड़ और सड़कें भी खुली सी। हमने कार पार्क की, गुरपाल कहने लगा कि उसे कैलाशपुरी से एक कार्ड लेकर कार में रखना पड़ेगा, नहीं तो ट्रैफिक पुलिस वाले कार को टो करके ले जायेंगे। इंटरकॉम के जरिये कैलाशपुरी को बताया कि हम बाहर आ गये हैं, उसने  झट से दरवाजा खोल दिया और आ खड़ी हुईं। बड़ी-सी मुस्कुराहट और बहुत ही गर्मजोशी से। उन्होंने हम दोनों को अपने आलिंगन में ले लिया और आदर से अंदर बिठाया। दो मिनट बैठे थे, कहने लगी, 'तुसां पहिले गर तको ना मेरा।'

उनकी पोठोहारी बोली बहुत प्यारी लगी और आवाज बिलकुल मेरी नानी की आवाज जैसी। पोठोहारी बोलने वाले लोग हमेशा मेरा मन मोहती रही हैं। कैलाशपुरी ने पूरे घर में छोटी-बड़ी वस्तुएं बहुत ही करीने से टिकाई हुईं हैं, जैसे कोई अजायब घर हो। मिले हुए सम्मान-पत्र, मोमैंटो और यादगारी

तस्वीरें, घर का कोई कोना खाली नहीं, कहीं पंडित नेहरू और इंदिरा के साथ खड़ी हैं कैलाशपुरी और कहीं ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर, सोभा सिंह, शिव कुमार, अजीत कौर, मीशा, संत सिंह सेखों, दुग्गल और भापा प्रीतम सिंह के साथ खड़ी मुस्कुरा रही हैं, जवानी के समय की तस्वीरों में वह किसी फिल्म की हीरोइन लग रही हैं। उनकी किताबों ने भी घर की बहुत सी जगह घेरी हुई है। लगता है कि जरूर ही उनका यह सारा काम कोई काम वाली करती होगी। उन्होंने बताया, 'बिलकुल नहीं, यह सारा काम मैं खुद ही करती हूं, एक गोरी आती है और थोड़ी-बहुत सफाई कर जाती है, कुछ खाने के लिए बना जाती है, बाकी सबका मैं खुद ध्यान रखती हूं, मुझे शौक है। घर में गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश है, दो वक्त करती हूं, ईश्वर की ओट है, बच्चे बहुत दूर और बहुत देर से, बेटा यूनैस्को में है और बेटी स्कूल्ज़ में इंस्पैक्टर है, बहुत लिखती हूं बेटा, बहुत लिखती हूं, हाथ थक जाते हैं, इंटरनैट मुझसे सीखा नहीं जाता, नावल छप रहा है नया एक, उसका नाम है–'ओई भी चंदन होई रहै' और एक किताब लेखों की है, कभी किसी अखबार वालों ने एक नया पैसा नहीं दिया, किताब तो मेरी मुफ्त में छप जाती है, बहुत काम किया है पूरे सत्तर साल, बच्चों और बुजुर्गों की सोसाइटी बनाकर लैक्चर बड़े दिये हैं लोक भलाई के, अब भी कभी-कभी चली जाती हूं, मेरे से अब ड्राइव नहीं होती, रास्ता भूल जाती हूं, जब पुरी साहब जीवित थे तो गाड़ी चलाते, कभी नहीं थकते, लोगों को दूर-दूर से लाना और छोड़ना, शिव कुमार को पहली बार विलायत हमने ही बुलाया था, एक बार ही आया है, यहां लोगों ने उसे अंधाधुंध शराब पिलाई, मैंने रोका तो मेरे से नाराज हो गया था, कहने लगा 'दीदी तुम मेरे साथ लड़ती हो।' मेरे घर से अपना बैग उठाकर चला गया था।

'पुत्तर, इंडिया जाने को बहुत मन करता है, पर किसके पास जायें? कोई है ही नहीं पीछे।'

कैलाशपुरी ने जो मेरे से विशेष बात की, वह यह थी, 'बेटा, आप बात करने में समर्थ हो, यंग हो, हम तो अब रह गये हैं। इंडिया में जाकर लोगों को, खासतौर पर हमारे पंजाबी लोगों को समझाओ कि अपने बच्चों को भटकने के लिए, पढ़ाई के नाम पर लंदन के अंधे कुंए में मत धकेलो, बेटा तुम तो देख ही चले हो, यहां कितना काम है। मंदी पड़ी हुई है, हमारे बच्चे नीचे-से नीचा काम करने को तैयार हैं, काम है नहीं, यदि यही काम करना है तो अपना देश

क्या बुरा है? अपने देश में काम क्यों नहीं करते हमारे बच्चे? यहां आकर मजदूरी करने का क्या चाव चढ़ा है? हमारी सरकारों ने भी तो बेटा रोजगार की कोई ठोस नीति नहीं बनाई। यह भी एक पक्ष है, हमें अपना देश छोड़ना पड़ा, अपने बच्चे बाहर को धकेलने पड़े-ठोकरें खाने को, बेटा हमारे समय में लोग भले थे, काम बहुत होता था। तब तो लोग मेहनत बहुत करते थे, बहुत राईज़ किया यहां आकर लोगों ने, पर अच्छे समय में।'

बातें करते-करते कैलाशपुरी ने गुरपाल सिंह की ओर देखा और उलाहने भरे स्वर में बोली, 'गुरपाल, तुमने भी कभी चक्कर नहीं लगाया, भूल गये हैं लोग, पुरी साहब के वक्त की रौनक याद आती हैं, कभी-कभी अकेलेपन का एहसास बहुत दुख देता है, घरों में लोगों के साथ ही रौनक होती है बेटा।' कैलाशपुरी की आंखें नम हो गयी।

जब मैं और गुरपाल सिंह घर से चलने लगे थे तो गुरपाल ने कहा था, 'तुंबी भी साथ लेकर चलो, कैलाशपुरी को गीत सुना देना, इतने से ही उनका मनोरंजन हो जायेगा, घर में अकेली बैठी हैं बेचारी।'

मैंने तुंबी भी ले ली थी। जब गुरपाल ने उन्हें तुंबी साथ लाने के बारे में बताया तो उनकी नम आंखों के कोनों में से चमक सी उतरी दिखाई दी, पूछने लगी, 'वे बेटा, यह तो तुणतुणी है, यह कहां से ले आया है तू...तुणतुणी?'

मैंने बताया, 'यह तुंबी है, तुणतुणी नहीं, इसको एकतारा भी कहते हैं, उस्ताद यमले जट्ट की तुंबी।'

'अच्छा पुत्तर, बजाओ इसे।'

मैंने जब तुंबी बजाई तो उन्होंने आंखें मूंद ली। मैंने एक लोक-गीत के बोल छुहेः

**माही ता मेरा गया परदेस नू नीं**
**सस्सू ने मारे मंदे बोल**
**वे लिआदे चंबा**
**लावां घड़े दे कोल...**

वृद्ध कैलाशपुरी किसी बच्चे के समान चहकने लगी, वह बागोबाग हो गयी थीं, 'गुरपाल, कभी चक्कर लगा जाया करो, यह लड़का आया है तो तुम भी आ गये, मेरा दिल आज बहुत खुश है आज बहुत खुश है।'

जब हम आने लगे तो कैलाशपुरी ने अपनी एक किताब 'सेज शृंगार'

मेरा नाम लिखकर मुझे दी, 'बेटा, यह आपका अपना घर है, यदि रहने-सहने की तंगी है तो यहां उठा लाओ अपना बैग...शर्माना मत।'

अगले दिन मैंने साऊथहाल से बर्मिंघम वापिस आना था, नहीं तो कैलाशपुरी की संगत का और आनंद उठाता, उनके घर से वापिस आ जाने के भी कितने घंटों तक खुद को कैलाशपुरी के आलिंगन में महसूस करता था।

(जून 2017 में कैलाशपुरी का लंदन में देहांत हो गया।)

# पानी और धरतियों का देश

मलेशियन एयरलाइन्स के भारी-भरकम जहाज़ ने जब रात के दस बजे सिड़नी के एयरपोर्ट पर कदम रखा तो उत्साहित मुसाफिरों ने जोर से ताली बजाई। एयरपोर्ट से बाहर आया तो ठंड थी। बाहर खेला परिवार इंतजार कर रहा था। सभी गर्मजोशी से मिले। मुझे 22 दिन सिड़नी रुकना था। अमरजीत खेला ने अपने टीवी कार्यक्रम 'आपणा पंजाब' के लिए मेरी कुछ रिकार्डिंग करनी थी। एक किताब रिलीज़ होनी थी। सिडनी में होने वाले अपने कुछ कार्यक्रमों में जाना था और यहीं से ही मैलबोर्न चले जाना था।

आस्ट्रेलिया में मुझे तीन महीने रहने का मौका मिला। मेरे पास विज़िटर वीज़ा था। इस समय के दौरान मैंने आस्ट्रेलिया के पानी और पर्वतों की खूब सैर की। यदि आस्ट्रेलिया को पानी और धरतियों की धरती कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आस्ट्रेलिया की धरती पर घूमते-फिरते सफ़र की कुछ यादें मन के चित्रपट पर हमेशा के लिए छाप छोड़ गयी। कभी-कभी मुझे लगता था कि मैं आस्ट्रेलिया की प्रकृति, कायनात और परिंदों के साथ एकसुर हो गया हूं और एक-सुर हो जाने के अहसास वाले वह पल मुझे कभी भी नहीं भूले।

एक दिन, एक बड़े जंगल के बीच से धरती से 633 मीटर की ऊंचाई पर फैली हुई मैलबोर्न की स्काई-हाई पहाड़ी का चप्पा-चप्पा छानकर जब लौट रहा था तो मन बहुत ही हल्के फूल के समान हो गया था। कई दिनों के लंबे सफर की थकावट कहीं उड़-सी गई थी। इस पहाड़ी के ऊपर से खड़े होकर देखा तो पूरा मैलबोर्न छोटा-सा दिख रहा था। यह हाई-स्काई मैलबोर्न से बाहर निकल कर 36 किलोमीटर की दूरी पर पड़ता है। दूर से दिखते एयरपोर्ट से उड़ान भरते-उतरते जहाज़ चिड़ियों के आकार के लगते थे, यूं, जैसे फर-फर करती एक चिड़िया उड़ी और दूसरी बैठ गई। जब हम इस पहाड़ी की ओर जा रहे थे तो रास्ते में तंग, टेढ़े-मेढ़े खाती, ऊपर की चढ़ती जाती पथरीले पहाड़ों को चीरकर खोदी सड़के आईं। जगह-जगह बोर्ड लगे

हुए थे, जिनपर लिखकर लगाया हुआ था कि कंगारू से बचो। पता नहीं कब, (आस्ट्रेलिया का यह राष्ट्रीय जानवर) कंगारू कहीं से छलांग मारता कार के आगे आ जाये, कंगारू का जायेगा कुछ नहीं, वह तो छलांग मार कर आगे से निकल जायेगा पर कार का बचेगा कुछ नहीं। इसलिए लोग जंगल की ओर जाते समय बहुत ध्यान से चलते हैं।

पहाड़ों पर छोटे-छोटे बंद डिब्बों जैसे लकड़ी के घर थे। पेड़ों के जमघट में सफेद-सा एक फट्टा दिखा। जब मैंने गौर से देखा तो यह बहुत छोटा-सा घर था, एक या दो लोगों के रहने के लिए। यहां से पता चलता है कि गोरे लोग शांति, प्रकृति और अकेलेपन को कितना चाहते हैं। यह छोटा सा घर बहुत-से बौने और लंबे पेड़ों के बीच घिरा हुआ था। यूं लगता था, जैसे किसी ने पेड़ों के इस जमघट में फट्टे टांगकर अपन रैन-बसेरा बना लिया हो।

इस पहाड़ी पर एक बहुत लंबे और चौड़े पेड़ से किसी महान कलाकार ने ऐसी कलाकृति पेश की हुई थी कि इंसान देखते ही दंग रह जाता था। एक पेड़ पर ही दाड़ी वाला बाबा दर्शन दे रहा था और साथ ही लंबी पूंछ वाली छिपकली भी। कंगारू भी और कुछ अन्य पंछी भी चित्रित किये हुए थे। मैं कितनी देर पेड़ों के आस-पास घूमता, इन सभी को उस सूखे पेड़ से निहारता हुआ उस आस्ट्रेलियन कलाकार की कला पर मन-ही-मन बलिहारी होता गया। जब पेड़ से जरा दूर गया तो घास के लान में पत्थर से बनी एक औरत खड़ी थी, जो अपने वस्त्र अपने शरीर से जुदा कर रही थी, यह भी किसी कलाकार की कला का अति-सुंदर नमूना था।

पहाड़ी पर बने छोटे पर बहुत खूबसूरत रैस्टोरेंट में गोरों की काफी भीड़ थी। कोई-कोई लोग छोटे-छोटे पार्कों में कुर्सियां बिछाये बैठा,बीयर की चुस्कियों से धूप की गर्माहट का मजा ले रहा था। आस्ट्रेलिया के पार्कों में चूल्हे फिट करने वाली स्कीम मुझे बहुत अच्छी लगी, लोग घर से कच्चा मांस और अन्य छोटी-मोटी लेकर आते हैं, चूल्हा जला कर भूनते और खाते जाते हैं, एक डालर चूल्हे का किराया डालो और काम चलाओ, जब किराया खत्म हो जाये तो एक और डालर और डाल कर जला लो। बहुत मज़े हैं...ऐसे चूल्हों के आस-पास पक्के फिट किये बैंचों की। हफ्ते के अंत पर घंटों बैठकर लोग वहां पार्टियां करते हैं। ऐसे बढ़िया प्रबंध आस्ट्रेलिया के लोगों के ईमानदार होने के कारण चलते रहते हैं, सार्वजनिक जगहों पर स्थापित की गयी किसी वस्तु को

कोई नहीं छेड़ता। हमारे लोग तो सार्वजनिक स्थानों पर लगे नलके भी नहीं छोड़ते, ना नलके, ना ट्यूब-लाइटें और ना बल्ब, ना कुर्सी और ना बैंच। रास्ते जाते जो पड़ा दिखा, वहीं उठाकर बगलों में दबा लिया परंतु आस्ट्रेलियन ऐसे नहीं करते। तभी तो वह मज़े करते हैं।

जंगल की हरियाली को लुत्फ उठाते हुए मेरा आकाश की ओर देखने को दिल किया, तो अंबर के फीके नीलेपन ने मन तरंगित कर दिया। हरे-भरे पेड़ों में खड़े एक सूखे पेड़ ने मुझे सोचने को मजबूर कर दिया। यह सूखा और खंडित पेड़ हरेक यात्री का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता था। जब मैं उसकी ओर कुछ पल देखता रहा तो वह पेड़ मुझे एक ऐसा इंसान लगा, जिसकी बांहें कोई बहुत ही बेदर्दी से काटकर ले गया हो। वह पेड़ अनगिनत वर्षों से वहां खड़ा आने-जाने वालों को मानो सवाल कर रहा हो कि मेरी बाजुएं काटकर कोई क्यों ले गया? क्या कसूर किया था मैंने? वह पेड़ अपने आस-पास हरे-भरे खड़े साबुत शरीर वाले अपने साथी पेड़ों से बहुत अलग और बहुत उदास था। मेरे साथ गये साथी ने बताया कि यह पूरी प्रस्तुति गोरों ने यात्रियों को प्रभावित करने और उनका ध्यान इस पेड़ पर केंद्रित करने के लिए की है।

टहलते-टहलते मैं एक घास के मैदान की ओर चला गया। घास का मैदान इतना साफ था और हरा-भरा घास इतनी करीने से काटा गया था, यूं लगता था कि जैसे यह घास का मैदान नहीं, बल्कि दूर-दूर तक कोई हरे रंग की नयीं-नयीं दरी बिछा गया हो। ऐसी दरी, जिस पर कोई सिलवट नहीं दिखती थी। कोसी-कोसी धूप ने मुझे घास की उस एक जैसी बिछी दरी पर कुछ पल लेटने के लिए मजबूर कर दिया था। ना हवा बह रही थी और ना ही कोई शोर सुनाई देता था। कोई विरला यात्री किसी से कोई बात भी करता था, तो वह सिर्फ अपने तक सुनने-सुनाने जितनी आवाज़ में ही करता था। मैं कुछ पलों के लिए लेटा था पर जब मैं जागा तो दो घंटे से भी अधिक का समय हो चला था, तब तक उस जंगल के पंछी भी गाने लग पड़े थे। भांति-भांति के पंछियों के सुर से भीगी आवाजे मंत्रमुग्ध कर देने वाली थी, वह पंछी गाते यूं लगे, जैसे मिलजुलकर समूह गान कर रहे हों। जब घर की ओर चले तो दूर तक फैले पहाड़ों के पीछे डूबता सूरज भी अपने घर लौट रहा था।

# मैलबोर्न के मेले

एयरपोर्ट से बाहर आया तो आंधी-सी चल रही थी। अभी अल सुबह ही थी पर फिर भी भीड़ थी। आसमान को छूती इमारतों की बत्तियां जगमग-जगमग कर रही थी। सुबह हुई ही थी और साथ ही दुनिया का मेला भी शुरू हो गया था। कोई किसी को पूछने वाला नहीं था, कहां से जाना है? कहां से आना है? बोर्ड जल रहे थे और टिमटिमाते अक्षर दिख रहे थे, यहां से अंदर घुसे और वहां से बाहर निकले। यहां कॉफी पियो वहां शौचालय जाओ। पंजाबी टैक्सी ड्राइवर गहरे रंगों की टैक्सियां भगाते जा रहे थे। ना कोई हार्न मारता था, ना ही कोई फालतू की रेस देकर धुआं फैलाता था। सभी अपने-अपने काम में लगे हुए थे, मस्त थे। जहाजों से उतरे सूट-बूट वाले गोरे व्यापारी हाथों में अटैची पकड़े और गले में लैपटाप के बैग लटकाये हुए तेजी से टैक्सी पकड़ रहे थे। वह हमारे लोगों की तरह आधे-सोये जागे नहीं बल्कि चुस्त-दुरस्त थे। चाल में चुस्ती थी...कदम सधे हुए थे। जिधर देखो, लंबे कद की महिलायें और मर्द तेज-तेज चलते दिखाई देते। चलते जाते कोई-कोई हलकी सी मुस्कान बिखेरता। सभी अपने-अपने ध्यान में थे। चले जाते गोरों को जैसे धरती खुद ही फुर्सत दे रही थी। उनके लंबे चोंच वाले बूट चमकते और लंबे काले कोट झूलते। कांच के गोल-गोल कंचों जैसी उनकी बिल्ली जैसी आंखें चारों ओर नजरे घुमाती। जहाज से उतरते अपने प्यारों को कोई फूल भेंट कर रहा था। कोई तस्वीरें खींचता था। कोई गले मिलता था। कोई आंसू पोंछ रहा था। कोई हल्का सा चुंबन भी लेता था और अपने-अपने प्यार-सम्मान पेश करता था। दो-दो मंजिला बसें भरी आती, उतारती और भर-भर वापिस चली जाती। टैक्सी एक मिनट से भी कम समय के लिए रुकती, सवारी उठाते और छू हो जाती। टैक्सी की लंबी कतार लगी हुई थी, ना चढ़ने वाले खत्म होते और ना ही उठाने वाले। जहाज ला-लाकर उतारते रहते, टैक्सियां उठा-उठाकर ले जाती।

मुझे ठंड सताने लगी। अपना लंबा कोट मैं बड़े अटैची में रख चुका था,

जो वहां खड़े होकर निकालना आसान नहीं लग रहा था। मुझे लेने आ रहा मुक्तसरिया दोस्त गिन्नी सग्गू ट्रैफिक में फंस गया था और बार-बार फोन कर रहा था कि मैं अभी पहुंचा, बस अभी।

सिडनी का मौसम तो ठीक-ठाक था और यहां तो ठंड परेशान कर रही थी। मैंने गुलूबंद निकालकर गले में लपेट लिया और ट्राली को खींचता बाहर को आ गया। पंद्रह मिनट खड़ा रहा और गिन्नी आ गया, कहने लगा, 'सुबह तो यहां यही मुसीबत होती है ट्रैफिक की, बिलकुल भी जगह नहीं मिलती कहीं कार पार्किंग की, सभी सड़कें जाम हैं आते हुए डेढ़ घंटा लग गया, इतना ही समय घर पहुंचने को लग जायेगा।'

मैलबोर्न तो खुला-खुला था। सिडनी के मुकाबले यहां बहुत फर्क था। मैंने यहां तीन सप्ताह रुकना था और सभी दिन पहले से ही कार्यक्रम, अपनी साहित्यिक-संगीत बैठकें और मित्रों व पाठकों से मिलने जुलने के लिए तिथि के अनुसार तय किये हुए थे। यदि मैलबोर्न के साऊथ से नार्थ की ओर जाना होता तो डेढ़ से दो घंटे आसानी से लग जाते। वैसे वैस्ट से ईस्ट के लिए खासा वक्त लगता। इन तीन हफ्तों को मैंने चारों ओर में बांट लिया था, ताकि मेरे मेजबानों का वक्त जाया ना हो और मुझे भी आसानी रहे। पता ही नहीं चला कि मैलबोर्न में तीन हफ्ते कैसे बीत गये! आस्ट्रेलिया विद्यार्थी वीजे पर गये जो लड़के-लड़कियां मुझे मिल रहे थे, वह सभी पहले से भारत में छपते मेरे लेख पढ़ते रहे थे, इस बात से मुझे बहुत हौंसला हुआ कि हमारी नयी पीढ़ी पढ़ती है, यदि उन्हें पढ़ने को मिले तो।

गीतकार बबल टहिणा के घर जाकर जब मैं ड्राईंग रूम में बैठा तो बड़ी हैरानी भरी खुशी हुई कि उसने बाबा नानक की फोटो से नीचे सुरजीत पातर की फोटो लगाई हुई थी, बाकी अन्य कोई और फोटो नहीं थी। बबल ने कहा कि बाबा नानक ने बाणी में लेखकों के बारे में कितना कमाल लिखा है, 'धन लिखारी नानका जिन नाम लिखाईया सच।' उसने बताया कि पहले नंबर पर बाबा नानक और दूसरे नंबर पर सुरजीत पातर मेरे मनपंसद हैं। उसने अपनी इच्छा जाहिर की कि वह पातर साहब के साथ फोन पर बात करना चाहता है पर डरता है कि इतना बड़ा शायर उससे बात करेगा या नहीं? मैंने उसे कहा कि नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, पातर साहब खुद बहुत कोमल इंसान और नम्रता से भरपूर हैं। लो अभी तुम्हारी बात करवाता हूं। मैंने पातर साहब के

मोबाइल पर फोन मिलाया और बबल की बात करवाई। वह बहुत प्रसन्न था पातर साहब से बात करके।

----------

जी-भरकर देखा आस्ट्रेलिया। पर्वतों और पानियों की सैर का तो खूब मजा लिया। बल्कि कच्चे रास्तों पर लंबी राह तक चला और पक्की व चौड़ी सड़कों की पगडंडियों में भी। किश्तियों और बोट में बैठकर पानी पर झूले लिये। हैलीकॉप्टर और स्थानीय जहाजों द्वारा बादलों की गठरियां करीब से देखी। हरियाली से भरी पहाड़ियां स्वर्ग की भांति लगी। दूर-दूर तक फैले जंगल। जंगल खत्म होता तो समंदर आ जाता, समंदर खत्म होता तो जंगल आ खड़ा होता। ना धरती का पता, ना पानी का, 'पवन गुरु पानी पिता...माता धरत महत।' गुरुओं का कहा कितना सच है कि धरती हमारी माता और पानी हमारा पिता है। जिधर देखो, धरती ही धरती पसरी पड़ी है, कोई अंत नहीं...'धरती और आगे और और' की तरह। आस्ट्रेलिया की हरियाली और सुंदरता ने मेरा मन मोह लिया। कुदरत के प्रसार और अलौकिक नज़ारे ने हैरान कर दिया और सोचने पर मजबूर कर दिया। बाबे की बाणी बहुत याद आई 'बलिहारे कुदरत वसिआ तेरा अंत ना जाई लखिआ।'

कहीं अमृत वेले और कहीं शाम के वक्त, कहीं एकसार होकर और कहीं जुदा-जुदा होकर गाते भांति-भांति के पंछियों की उड़ान अनोखा सा संगीत छेड़ती, कलेजे को ठंडक देती और दूर-दूर तक उड़ती जाती। आस्ट्रेलियन पंछियों के गीत सुन कर मुझे अपने देश भारत पर सचमुच ही तरस आया था कि वह देश ही क्या हुआ? जिसके पंछी वहां के लोगों और जहरीले हो गये पर्यावरण से डरते हुए दूर उड़ान भर लें ? बड़ा अच्छा लगा कि आस्ट्रेलिया में पंछियों, परिंदों और जानवरों का इंसान के बराबर सम्मान, संभाल और प्यार बहाल है।

अकसर ही मैं सुरीले पंछियों के गीत सुनने के लिए इच्छुक रहता और जंगल की ओर चल पड़ता। जब मैंने ऊंचे पर्वतों पर खड़े होकर भीड़ से भरे शहरों की ऊंची और आसमान छूती इमारतों की ओर देखा तो वह छोटे-छोटे डिब्बों और डिब्बियों जितनी ही लगी।

आस्ट्रेलिया घनघोर जंगलों और गहरे पानी का देश है। कहीं छलांग मारती और उछलती तो कहीं शांत चित्त बहती, घोगे सिप्पियां, मोती व अन्य

बहुत कुछ किनारों पर ला पटकती, रंग-बिरंगे पानी लदे किनारे। जंगल में सफेदा ही सफेदा खड़ा है, कहीं-कहीं लंबा तो कहीं-कहीं बौना सफेदा। हमारे देश में जन्म से ही घास उगता है और आस्ट्रेलिया में सफेदा। खेतों में आदमी कम ही नजर आये। भेड़ों, गायों, घोड़ों के समूह अपने-आप में मस्त होकर चरते देखे।

मैं एक फार्म में गया। शाम हो चुकी थी। गायें पेट भरने के बाद मुंह उठा-उठाकर आते अपने गोरे मालिक की राह तकती,उसका इंतजार कर रही थी कि वह जल्दी-जल्दी आये, उनका दूध निकाले, उनका भार कम करे। जब कच्चे रास्ते पर मालिक के  स्कूटर आता गायों ने देखा तो उन्होंने जोर-जोर से रंभाना शुरू कर दिया। जैसे आसमान ही सिर पर उठा लेंगी। एक पल मुझे लगा कि जैसे मैं किसी कसाई की हवेली में आ खड़ा होऊं। गायों ने धीरे-धीरे रंभाना छोड़ा और अपनी-अपनी बारी के मुताबिक मशीनों के पास आकर दूध निकलवाने लगी। मैं देखता रहा।

# गांव 'वलगूलगा' को जाते!

अश्वेत अफ्रीकन महिला की आवाज उस खांसने वाले बूढ़े की आवाज सरीखी थी, जो खांस-खांस कर अति सुरीला को गया हो! उसके साथ उसकी बेटी और दो दोहतियां भी इस ट्रेन में सफर कर रही थीं। सबसे छोटी दोहती को नानी ने अपनी गोद में लिया हुआ था,जो उससे पीछा छुड़ा-छुड़ा कर अपनी मां और कभी नानी के कंधों पर भाग-भाग कर चढ़ने लगती थी और इधर-उधर छलांग लगाती थी। मां-बेटी बच्ची को बार-बार टिककर बैठने के लिए कह रही थीं और ट्रेन के बाहर बनते-बिगड़ते प्राकृतिक दृश्यों की ओर उसका ध्यान आकर्षित कर रही थी। वह जरा भी ध्यान ना देती और ना ही टिक रही थी। कभी-कभी खुद-ब-खुद भांति-भांति की आवाजें निकालने लगती थी। जब वह तीखी आवाज में चिल्लाती तो मेरा दिल बहुत बेचैन हो जाता पर मैं कुछ कर नहीं सकता था। हमारे डिब्बे में मुसाफिर ज्यादा नहीं थे,कम ही थे, जितने मुसाफिर बैठे थे, वह अपने आप में मस्त थे, किसी ने अपने कानों पर हैडफोन लगा रखा था और संगीत सुनने में मग्न था, कोई किताब पढ़ रहा था, कोई अपना लैपटॉप खोलकर अपना काम कर रहा था और कोई नींद का भरा हुआ गहरी नींद सो रहा था। कोई टिकटिकी लगाये बाहर के नजारों का आनंद उठा रहा था, और यदि कोई था वह उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दे रहा था,जैसे उस डिब्बे पर कुछ भी घटित ना हो रहा हो! अब तो ना मां ने, ना बेटी ने, उस बच्ची को जरा भी ना कहा कि वह टिक जाये, जब बच्ची शोर मचाती तो उसकी मां व बेटी खुश होती। ट्रेन चले हुए तीन घंटे हो चुके थे।

हम सिड़नी से गांव वलगूलगा स्थित एक मित्र अमनदीप सिद्धू के पास जा रहे थे, मेरे साथ अंकल मनमोहन सिंह खेला थे, जो बार-बार कह रहे थे कि यह बच्ची शोर डालने से नहीं हटेगी, तुम मस्त हो जाओ...सो जाओ। खेला अंकल ने हमारी अगली सीट के पीछे से एक पेपर निकाला, जिसपर ट्रेन में सफर करने के लिए सख्त हिदायतें लिखी हुई थीं। खेला अंकल कहने

लगे कि हिदायतों के मुताबिक वह अश्वेत महिलायें सब गलत कर रही हैं परंतु चलो कोई बात नहीं, जैसे भी सही बेटा समय काट लो...अच्छा समय आयेगा! (दड्ड वट्ट जमाना कट्ट पुत्तर...भले दिन औणगे।)

हमारी यह राह लगभग पौने नौ घंटों का था। गाड़ी की आवाज भी नहीं सुनाई दे रही थी। यूं लगता था जैसे चुपचाप एक बंद कमरा खुद-ब-खुद कहीं भागा जा रहा हो, ना कोई रोकने वाला हो ना बंद करने वाला। खेला अंकल ने, घर से लाये आम केआचार के साथ बांध कर लाये तीन परौंठे निकाले और चाय वाली केतली का मुंह खोला।

दूर-दूर तक जंगल ही जंगल! सफेदे और हरियाली ही हरियाली। जब ट्रेन घने जंगल से गुजरती तो कहीं-कहीं मरे हुए पशु दिखाई देते। कहीं-कहीं आग लग कर बुझी हुई दिखती, धुआं उठ रहा होता। कभी-कभी काले पानी वाला कोई दरिया आ जाता, उसमें टूटी-फूटी लकड़ियां तैर रही होती थीं। कहीं आधे-सूखी हुई छोटी नहर भी नजर आई। जंगलों से निकलती और पर्वतों से गुजरती ट्रेन दौड़ी जा रही थी, देखकर मैं सोचने लगता कि लकड़ियों के यह ढेर कौन बहा गया है? इतनी लकड़ियां उठाने और बहाने कौन इन जंगलों में आता होगा, अंकल ने बताया कि बारिश-अंधेरी में खुद-ब-खुद गिरी-टूटी लकड़ियां बह रही हैं। इंसान-परिंदा तो यहां दूर-दूर तक नहीं दिख रहा था। जंगल के एक ओर बड़े सींगों वाली भैंसे चर रही थी, साथ ही भेड़ों का सैलाब घास पर मुंह मार रहा था। चरते-चरते भेड़ें गिर जाती, खुद-ब-खुद उठ जाती। मैं यह देखकर हैरान हुआ कि यहां तो जानवर भी आजाद थे। ना कोई चराने आता था, ना कोई खोलने और बांधने आता था और ना ही किसी के खेत में मुंह मारने वाली गाय को हटाने कोई आता था। कहां था इनका चरवाहा? हम ट्रेन के पिछले हिस्से में बैठे हुए थे, जब ट्रेन मोड़ मुड़ती गोलाई भरती तो हमें अपनी ट्रेन पर बैठे हुए ही सामने की पूरी ट्रेन नजर आ जाती। हरेक स्टेशन पर सिर्फ सात सेकेंड ही ट्रेन रुकती थी, बेशक कोई चढ़े या उतरे ना। ना भीड़भाड़। ना ही भागदौड़, ना क्रोध, सबकुछ सहज और आसान।

बीच में कभी कभार कोई कस्बा आता। छोटे-छोटे बंद घरों के सामने गाड़ियां खड़ी दिखती। इन घरों का बाशिंदा कोई इंसान या बुढ़िया या बच्चा दूर तक भी नजर नहीं आते। ट्रेन में टीटी दो बार चक्कर लगाने आया था, उसे

सभी मुसाफिरों पर यकीन था कि यहां कोई भाड़ा चोर नहीं है,सभी टिकट लेकर बैठे थे। एक सफाई सेवक दो बार आया था। स्पीकर से आवाज आई कि जिसने खाना लेना है, बड़ा सस्ता और शुद्ध गर्म खाना इस-इस भाव में मिल रहा है, आओ और ले जाओ, यह आवाज सुनकर हमारे नजदीक की सीटों से तीन लोग उठे और अपना-अपना खाना खरीद कर वापिस सीट पर आ गये थे।

मेरा पूरा ध्यान बाहर की ओर ही लगा हुआ था। कहीं-कहीं थोड़ा बहुत घास आ जाता तो कहीं-कहीं पीला घास। जो पेड़ अपने आप काफी समय पहले से गिरकर टूटे हुए थे, घास ने उन्हें अपने-आप में छुपा लिया था। कभी-कभी ट्रेन गहरी काली सुरंग में घुस जाती, जब सुरंग से बाहर निकलती तो पल ही में समुद्र में जा घुसती थी। आस-पास चांदी जैसे रंग में पानी चमकता, दूर-दूर तक छोटे आकार की किश्तियां और निगाह मारी तो दिल किया कि काश मैं भी उनमें सैर कर सकता। बहुत से छोटे-बड़े टापू आ रहे थे, टापुओं पर छोटे-छोटे घरों में बसे इन लोगों का अपना ही निराला और अलौकिक संसार था। इनका सीधा रिश्ता सिर्फ जंगल और पानी से ही था, अन्य किसी से इन्होंने क्या लेना था? ऐसे लंबे समय का आनं चुप्पी की तालाश करता है,परंतु मोटी काली अफ्रीकन बोलने से ना हटी, दोहती जब तक थक हार कर सो गयी तो नानी की बारी आ गयी। उसकी आवाज मेरे कानों को तंग करने लगी थी और मैं अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ। आखिर कोई और चारा ना देखकर मैंने अपने बैग से एकतारा निकाला और बीच में खड़ा होकर बजाने लगा। एकतारे की झंकार ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। मोटी अफ्रीकन महिला और उसकी बेटी इकतारे की ओर गौर से देखकर मुस्कुराने लगी। मुसाफिरों ने इकतारे की झंकार की आवाज पर खुशी से तालियां बजा दी थी। दस मिनट के बाद मैंने अपना इकतारा बैग में रख दिया था। काली अफ्रीकन को अपना कोई बहुत पुराना लोकगीत याद आ गया था, उसने गाना शुरू कर दिया और साथ ही उसकी आवाज में उसकी बेटी ने अपनी आवाज मिला दी, वह लगभग आठ मिनट गाती रहीं। मैंने भी उनके लोकगीत का मुस्कुराकर स्वागत कर दिया था। गाना गाने के बाद मां-बेटी सो रही बच्ची के साथ सोने लगी।

मैंने महसूस किया कि कितना अच्छा होता कि यदि मैं पहले ही तुंबी

बजा लेता। अब तक तो कब का टिकाव हो जाता। मैंने बाहर की ओर देखा जोरदार बारिश होने को थी और घनघोर काले बादलों ने ट्रेन को अपने ओट में ले लिया था। खेला अंकल तो परांठे खाने के बाद कब के सो चुके थे। अब सभी को सोते देखकर मेरा भी सोने को दिल करने लगा था। मैं चौड़े शीशे के साथ सिर टिकाकर सोने का प्रयत्न करने लगा।

# पहली बार देखा समुद्री जहाज

तेज बह रही हवा का बहाव समुंद्र से उलट था। हवा ठंडी शीत और खारी थी,मेरा मन इस तेज, ठंडी और खारी हवा से जरा भी जुदा होने का नहीं कर रहा था, सो, कितना ही समय नंगे पांव किनारे-किनारे बिछे रेत पर चलता यूं महसूस कर रहा था जैसे दूर-दूर तक बिछाये गये नमक में चलता जा रहा हूं। वह नमक जो मानो भारी पथरीली चक्कियों ने अच्छे से पीस फैंका था और कोई इसे समुद्र के किनारे आकर फैला गया था। समुद्र उछलता रहा था। चांदी जैसे रंग से भरी लहरें दूर से उठती थी और किनारे आकर समा जाती थी। सूरज जैसे सहज ही समुद्र में उतर जाने की तैयारी करने लगा। जब मैंने समुद्र के शिखर तक निगाह दौड़ाने का प्रयत्न किया तो समुद्र मुझे एक लंबी-चौड़ी काली स्लेट की तरह लगने लगा, जिस स्लेट पर कोई लकीर बहती और लहर बन जाती थी, जो ऊंचा उठती थी,लहराती थी, उछलती थी और झट ही काली स्लेट में गर्क हो जाती थी। काफी दूर से दिखाई दिया, यूं लगा जैसे कोई बिल्डिंग सी तैरती आ रही हो!

दोस्त शिवदीप कहने लगा कि लगता है कोई बड़ा जहाज आ रहा है, बहुत से लोगों से भरा हुआ। समुद्री जहाज बिलकुल हमारी ओर आ रहा था। धीरे-धीरे उसका आकार बड़ा होता जा रहा था। मेरी उस बड़े समुद्री जहाज को नजदीक से देखने की उत्सुकता हिलौरे मारने लगी, इससे पहले मैंने समुद्री जहाज तस्वीरों या फिल्मों में ही देखा था। किसी बंदरगाह पर खड़ा समुद्री जहाज प्रत्यक्ष नही देखा था। परंतु समुद्र के किनारे जहां हम चल रहे थे, यह बंदरगाह का इलाका नहीं था यह तो आमतौर पर घूमने-फिरने वाले यात्रियों के लिए सैरगाह का इलाका था। यहां आने वाले लोग आमतौर पर मस्त-मौला जैसे ही दिखाई दे रहे थे अपने आप में मस्त-मस्त। बहुत अकेले-अकेले थे, या कभी-कभार जोड़ा वहां सैर करते दिखता था। मेरे देखते-देखते एक गोरी अपने कुत्ते के साथ चलते-चलते बहुत दूर निकल गयी थी। एक बूढ़ा गोरा बगल में अपनी पालतू बिल्ली उठाये बहुत सहज चाल चल रहा था।

'जब यहां बंदरगाह ही नहीं तो यह जहाज सीधा अपनी ही ओर क्यों आ रहा है, दूसरी ओर क्यों नहीं मुड़ जाता?' आखिर मैंने शिवदीप से पूछ ही लिया।

'अभी ही मोड़ काटने वाला है,देखता जा...इसका किनारा तो अभी काफी दूर पड़ा है।' कवि दोस्त शिव पहले ऐसे जहाजों को देखने के लिए अकसर ही ऐसी बंदरगाहों पर चक्कर लगाता रहता था।

उसने कार स्टार्ट करते कहा, 'बंदरगाह यहां से हमें दस किलोमीटर पड़ेगी, चल चलते हैं, हम पहले पहुंच जायेंगे, यह तो अभी देर से पहुंचेगा।'

बंदरगाह आ गयी। यहां लोगों की खासी भीड़ थी। यह भीड़ इसी जहाज का बहुत बेसब्री से इंतजार कर रही थी। दूर देश से आये अपने-अपने संबंधियों को लेने के लिए लोग पहुंचे हुए थे। हम जल्दी कार पार्क करके किनारे पर जा खड़े हुए। ज्यों-ज्यों जहाज नजदीक आ रहा था, यूं लगता था कि जैसे कोई बहुत बड़ी, पूरी की पूरी, भरी-पूरी और चुप्पी साधे इमारत पानी में ही तैरती आ रही हो! एक बार तो मुझे यूं लगा जैसे फरीदकोट का मिनी सचिवालय ही किनारे की ओर तैरता आ रहा हो। इतना ऊंचा और बड़ा समुद्री जहाज मैंने पहली बार देखा था। यह जहाज साऊथ अफ्रीका के पनामा से आया था। ज्यों ही जहाज किनारे पर आने लगा पोर्ट की बड़ी इमारत उसकी परछाईं तले आ गयी और बहुत बौनी लगने लगी। जहाज के ऊपर खड़े जहाज के सदस्य, जो बहुत छोटे-छोटे लग रहे थे, जैसे बच्चे दौड़ते फिरते हों। उन्होंने बड़ी फुर्ती से मोटे-मोटे रस्से नीचे की ओर फेंके तो तैयार-बर-तैयार खड़े वर्दीधारियों लोगों ने रस्सों को पकड़ कर, किनारे पर लगे कीलों से कसकर बांध दिया। लगा कि भारी देह वाला बड़ा जहाज जैसे लंबी राह से थक-टूट चुका था और पोर्ट के समीप वाले बंद डिब्बों जैसे छोटे-छोटे घरों ने उसका हाल-चाल पूछा था, 'कैसे हो दोस्त, खैरियत से आ पहुंचे हो?'

जहाज़ पर अंग्रेजी के मोटे अक्षरों से 'डरबन हाई-वे-पनामा' लिखा हुआ था। गहरे स्लेटी रंग चाईनीज़ कंपनी 'के-साईन' का जहाज था। उसकी चोटी पर उनके देश का झंडा झूल रहा था। बताया गया कि इस जहाज़ का पानी के दस मीटर अंदर तक आकार बाकी था। बड़ा दरवाजा खुल गया तो मुसाफिर बाहर निकलने लगे। इतने में एक ट्रेन आ गयी, कुछ ट्रेन में चढ़ने

लगे, कुछ कारों में बैठने लगे तो कईयों को बस ले जाने लगी।

जब बंदरगाह पर लाइटें जलने लगी तो जहाज और भी खामोश हो गया। उसका वजूद अंधेरे की चादर में लिपट गया। समुद्र की कालिख और भी गहरी हो गयी। मैं और शिवदीप भी घर की ओर चल पड़े।

# गांव मिलडूरे की यात्रा

जब ऐडीलेड आया तो एक गुरु घर में मिंटू बराड़ के साथ कंवलजीत ग्रेवाल मिला। उस दिन वहां बच्चों के दस्तार मुकाबले हो रहे थे। वह मिलडूरा से ऐडीलेड लंबा रास्ता तय कर बच्चों को इस मुकाबले में भाग लेने के लिए लेकर आया था,ताकि बच्चे अपने धर्म और विरासत के प्रति जागरूक रहें। पहली बार में ही ग्रेवाल से मिलकर बेइंतहा अपनेपन और आदर का अहसास हुआ। उसे निमंत्रण दिया मिलडूरे आने का। जिसे मैंने बहुत खुशी से स्वीकार किया। मिंटू बराड़ व्यस्त थे तो मेरे साथ मित्र जोगिंदर कुंदी और कामरेड अमरिंदर रिऊना जाने के लिए तैयार हुए। हमें करीबन पांच घंटे लगने थे मिलडूरे पहुंचने में। कुंदी ने अपनी कार के पहिये बदलवाये और कार की साफ-सफाई की।

हम चल पड़े। मिंटू ने रास्ते में पड़ते कुछ अन्य शहरों पर रहने वाले अपने मित्रों को हमारे आने के बारे में संदेश भेज दिया। हम सभी को मिलते हुए गए। समय काफी था, क्योंकि ग्रेवाल बंधुओं द्वारा हमारे लिए रखा समारोह शाम को था।

रिवरलैंड आ गया। यह ऐडिलेड से डेढ़ सौ किलोमीटर के इलाके में फैला हुआ था और सवा सौ किलोमीटर आगे विक्टोरिया की सीमा लगती है। यहां हमें कुछ समय रुकना था। अंग्रेजी अखबार 'रिवरलैंड वीकली' के गोरे एडीटर ब्रैंड ने हमें आकर मिलना था और मेरा इंटरव्यू लेना था। इसका प्रबंध हरविंदर सिंह गरचा ने किया था। (गरचा हर सप्ताह यहां पंजाबी रेडियो स्टेशन पर पंद्रह मिनट पंजाबियों के लिए कार्यक्रम पेश करता है), उसने भी रेडियो के लिए मेरे साथ बातचीत करनी थी परंतु उसके लिए मुझसे समय नहीं निकल पाया और उससे मैंने माफी मांग ली।

रैनमार्क कस्बा आया। बिलकुल स्वर्ग। सफाई और सुंदरता का कोई अंत नहीं था। चारों ओर हरियाली पसरी थी। खूब बड़ा था रैनमार्क कस्बा। मनमोहक झीलें, कुछ इसी तरह का था रिवरलैंड। रैड वाईन बनाने वाले

महिंदर सिंह काहलों की वाईनरी में हम करीबन एक घंटा रुके और दोपहर का भोजन किया। बहुत बडी थी वाईनरी, अधेड़ और पंजाबी नौजवान काम करते फिरते थे। अंगूरों से रैड वाईन बनती थी। कैसे बनती? यह सब कुछ भी हमें समझाया और दिखाया गया। काहलों साहब ने अपने पड़ोसी वाईनरियों को आवाज मार ली, 'अपने-अपने काम छोड़ कर आधे घंटे के लिए आ जाओ, इंडिया से राईटर आया है।' वहां पंजाब की राजनीति, बाबों आदि को लेकर विभिन्न विषयों पर बहुत बातें हुईं। बातें तो बहुत थी परंतु समय नहीं था।

रास्ते में आया एक गांव ट्रूरो मुझे कभी नहीं भूलता, यूं लगता था जैसे ट्रूरों हमारे नजदीकी कस्बा सादिक ही हो। ट्रूरो गांव 1863 में बसा था। ऐडीलेड से मिलडूरे तक का सफर मेरे लिए यादगारी बनकर रह गया। किस-किस बात का वर्णन करूं? राह में कहीं-कहीं टूटी सड़क भी आई तो बहुत हैरानी हुई। कुंदी कार चलाते जा रहे थे। दूर-दूर तक धरती ही धरती दिख रही थी। कभी घना जंगल आ जाता। प्राकृतिक दृश्य बनते और अदृश्य हो जाते। ऊंचाई-निचाई आती। दूर-दूर तक पेड़-ही-पेड़? कौन लगा गया इतने पेड़? विभिन्न प्रकार के सोच की तरंग पैदा होती। कभी कनक का खेत आ जाता। गेहूं की फसल का रंग भी भिन्न-भिन्न था। कभी गहरी हरे रंग का खेत, कहीं तोते के रंग जैसी गेहूं, कहीं लंबे सफेदे और कहीं बिलकुल मध्यम। जिधर देखो, हरियाली ने धरती को बांहों में भरा हुआ था। कहीं अंगूरों और संतरों का खेत आ जाता। सड़क किनारे कौड़-तुम्मे देखकर मुझे अपने गांव के खेत याद आ गये। कहीं-कहीं बदामों का खेत आ जाता। कहीं कनौला (सरसों) बिलकुल वैसे, जैसे पंजाब में खड़ी होती है, सरसों की फसल...पीली-पीली...दूर तक गहरा पीलापन देख यूं लगता था, जैसे धरती माता ने लंबी पीली चुन्नी ओढ़ रखी हो। किसी खेत में आस्ट्रेलियन भेड़ों के झुंड चरते दिखाई देते। कोई लाल मिट्टी वाला खेत फसल बोने को तैयार मिलता। किसी काली मिट्टी वाला खेत दिखाई देता। पंजाब के अबोहर-फाजिल्का इलाके की तरह सड़क के आस-पास संतरों के खेतों के मालिक संतरे बेचने के लिए बैठे होते थे, कोई-कोई कार रुकती और संतरे खरीदकर चली जाती।

कुंदी ने बताया कि यह गांव बेकरी है, यहां आकर हमारे पंजाबी लोगों ने बहुत सख्त मेहनत की है। विद्यार्थी वीज़ों पर आये लड़के बहुत सख्त

मेहनत करते हैं यहां। काम होता था, संतरे तोड़ने और अंगूरों के खेतों में से बेलों से पत्ते उतारने का। बहुत सख्त काम था।

बातें करते-करते हम एक जंगल में जा घुसे। आगे पुल से एक बड़ा दरिया आ गया। एक बड़ा जहाज तीन कारों को लादे हुए हमारी ओर आ रहा था। हम उसका इंतजार करने लगे। उसने कारों को किनारों पर उतारा और हमारी कार समेत चार अन्य कारों को चढ़ा लिया और चल पड़ा दरिया पार करवाने। बताया गया कि सरकारें यहां पुल इसलिए नहीं बना रही क्योंकि कोई कभी-कभार ही यहां से गुजरता है। सरकार पुल बनाकर फालतू पैसे बर्बाद क्यों करे?

खैर आ ही गया गांव मिलडूरा। ग्रेवाल भाईयों के घर जा पहुंचे। पूरा परिवार बहुत मिलनसार था। गुरसिख बच्चे भी बार-बार आकर मिले। उन्होंने अपने रैस्टोरैंट में कार्यक्रम आयोजित किया था और मिलडूरे के खास लोगों को भी आमंत्रित किया हुआ था। ग्रेवालों का आटा और बादाम आस्ट्रेलिया भर में मशहूर था। सभी भाई बहुत प्यार-सम्मान से पहुंचे हुए थे। मेहनती और मिलनसार। समागम की समाप्ति के बाद हमें एक बहुत ही शानदार होटल (फाइव स्टार से भी बढ़िया सहूलियत वाला) में ठहराया गया, जो दरिया के किनारे पड़ता था। ऐसे शानदार होटल में मैं पहली बार रुक रहा था। कुंदी और अमरिंदर ने फ्रिज का मुंह खोला तो वाईन और बीयर की बोतलें आवाज लगा रही थी। मिलडूरे की रौनक मन से कभी फीकी नहीं पड़ी, बल्कि मेरी आस्ट्रेलिया यात्रा की ताजगी में बढ़ोत्तरी ही हुई।

# वह नस्लीय भेदभाव नहीं था

आस्ट्रेलिया की यात्रा के दौरान जब मुझे पंजाबी विद्यार्थियों ने यह बताया कि उनके साथ वहां कभी कोई नस्लीय भेदभाव नहीं हुआ, तो मैं सोच में पड़ गया और पूछा कि कुछ समय पहले जब आस्ट्रेलिया में भारतीय विद्यार्थियों की मार-पीट के मामले मीडिया द्वारा सामने आये थे तो वह नस्लीय भेदभाव नहीं तो फिर क्या था? बल्कि वहां तो विद्यार्थी खुद ही कह रहे थे कि आस्ट्रेलिया जैसी सुंदर और विशाल धरती पर,(जहां भिन्न-भिन्न देशों से आये भिन्न-भिन्न समुदाय के लोग मिल-जुलकर रहते हैं), उनके साथ कभी ऐसी घटना नहीं घटी कि कभी किसी ने इस बात पर उनसे मारपीट की हो कि वह इस देश में क्यों आया है? मेरी इस मामले में जिज्ञासा देखते हुए विद्यार्थियों ने बताया कि यह सारा मामला कुछेक भारतीय विद्यार्थियों का ही छेड़ा हुआ था, उन्होंने अपने पैरों खुद ही कुल्हाड़ी मार ली और ऐसे कुछेक विद्यार्थियों,अन्य बहुत से विद्यार्थियों का भी भविष्य दांव पर लगा दिया, जिनका ऐसी घटनाओं से दूर-दूर तक का भी वास्ता नहीं था। शरारत करने वाले ऐसे विद्यार्थियों ने खुद तो उजड़ना था ही, बल्कि उन्हें भी मुसीबत में डालकर चलते बने। पता चला कि जिन ऐसे विद्यार्थियों ने आस्ट्रेलिया में आकर यह समस्या पैदा की थी, उन्होंने भारत में रहते हुए भी उलाहने ही कमाये। ऐसे लोगों में से अब बहुत से अपने-अपने ठिकानों पर लौट गये हैं।

अपनी आस्ट्रेलिया यात्रा के दौरान मैं वहां के 5 प्रांतों में गया और पंजाब के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से गये हुए पंजाबियों को और भारत के अलावा अन्य देशों से गये लोगों को मिला था। हर जगह से लगभग एक जैसे विचार ही जानने को मिले। परंतु कुछ लोगों ने यह भी बताया कि हां, इस बात से भी इंकार नहीं है कि कभी-कभी, कोई गोरा हमारे लोगों से ज्यादती कर ही जाता है, कभी टैक्सी वाले का किराया ना देना, शराब पीकर फिजूल की बहस करना और गुत्थम-गुत्था होना। पता चला कि जो कुछेक घटनायें हुई थीं, उनका भी मीडिया के अनपढ़ पत्रकारों ने 'बात का बतंगड़' बना दिया था। आस्ट्रेलिया में

तो अभी पता ही नहीं चलता था कि क्या बात हुई है? और इंडिया में आग लग जाती थी और मां-बाप फिक्र से तड़पते अपने बच्चों को फोन कर-करके पूछते कि आज खबर आई है, बचकर रहना या जान बचा कर इंडिया वापिस आ जाओ। डरते हुए बहुत से विद्यार्थी इंडिया दौड़ गये। फीसे भरी की भरी रह गयी। कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा। कहां कमाई करने आये थे और नयी मुसीबत ही छिड़ गयी। बहुतों को तो पुलिस ने अंदर कर दिया। मामले दर्ज हुए। सजायें भुगती और कुछेक को इंडिया डिपोर्ट कर दिया गया।

एक दिन इस गंभीर और अहम मुद्दे पर एक महफिल में बातें चल पड़ी। इस महफिल में वह लोग भी बैठे हुए थे, जो किसी समय उस धरती पर विद्यार्थी बनकर आये थे और पढ़-लिखकर अपने-अपने कामों में सफल हो गये थे और खूब पैसे वाले और अच्छे काम काज वाले बन चुके हैं। इस महफिल में कुछेक वह लोग भी बैठे थे, जो अभी बतौर विद्यार्थी आये थे, पढ़ भी रहे थे और साथ ही काम भी कर रहे थे, उनके आगे अनेकों मुश्किलें मुंह बाये खड़ी थी, और उनसे पहले आये और सफल हो चुके पुरानों के प्रति यह रोष भी था कि यह अब किसी को कुछ नहीं समझते और खासतौर पर आये नये विद्यार्थियों को तो बहुत ईर्ष्या भरी नजर से देखते हैं, यह अपना समय अब भूल चुके हैं। यह भी कहा जाता था कि यह अकेली ईर्ष्या ही नहीं करते, बल्कि यह नये आये लोगों का हक भी मारते हैं और अपने-अपने व्यापार में इनसे काम करवा कर, इनका बनता वेतन नहीं देते और यदि कोई बहसबाजी करता है तो कहते हैं कि पुलिस को पकड़ा देंगे। नये लोगों का कुछ यह आरोप पुरानों पर था।

इस बारे में पुराने लोग यह कहते थे कि नये आये यह लड़के अपने काम के प्रति जरा भी गंभीर और समर्पित नहीं हैं। वह (पुराने) अपने समय बहुत ही मुश्किल से यहां पहुंचे थे और बहुत कड़ा संघर्ष करते रहे और यह बहुत आसानी से यहां पहुंच गये और यह उनकी तरह मेहनत करने से भी जी चुराते हैं, बल्कि लड़ते भी हैं।

यही बातें देख-सुनकर पता चलता था कि पंजाब समुदाय की वहां अलग-अलग श्रेणियां बन चुकी थी और वह एक-दूसरे पर अलग-अलग दोषारोपण करते थे। मेरे लिए यह सभी दुखदायी पल थे कि क्या पंजाबी कौम को यह श्राप मिला है कि वह दुनिया में जहां भी जाते हैं, आपस में ही लड़-

लड़ कर मरते रहते हैं, आपसी जलन और ईर्ष्या हर जगह देखी गयी है। इतनी महान पंजाबियों की कौम किन चक्करों में पड़ गयी है?

मेरे मन में यह बात थी कि यदि पुरानों को नयों के बारे या उनके साथ हुए नस्लीय भेदभाव के बारे में पूछूंगा तो वह और बढ़ा-चढ़ा कर अपना पक्ष बतायेंगे। इस मुद्दे के बारे में सटीक जानकारी कोई नया ही दे सकता है, वह भी कोई एक नहीं बल्कि कई लोगों को पूछूंगा कि असल में इन दंगों के पीछे की कहानी क्या थी? यह नयों ने ही बताया था और कहा था, 'हम बड़ी निष्पक्षता से यह बात कहेंगे, कुछ वह लोग, जो स्पाऊस वीजे पर अपनी मंगेतरों के साथ आये थे, बहुत ही कम पढ़े-लिखे हुए थे वह लोग, जिन्होंने अपने जिले की लोकल सिटी भी अच्छी तरह से नहीं देखी और वह सीधे आकर उतरे मैलबोर्न जैसे सुंदर शहर में, जैसे किसी पागल बुढ़िया को बैटरी मिल गयी और वह उसे दिन में ही जलाती फिरती थी, बिलकुल वैसे। ट्रेनों में फोन पर जोर से आवाज पर गाने बजाने लगे, थूक फैंकने लगे, गालियां निकालने लगे, रास्ते पर जाने वाली गोरियों पर भद्दे मज़ाक करने लगे, दारू पीकर लड़ने लगे।'

लड़के बता रहे थे, 'अब सवाल यही है कि जब इनके सुंदर देशों में आकर इन्हें ऐसी समस्यायें देंगे तो यह क्या कर गुजरेंगे हमारे साथ, आप बताओ? यदि यूपी से आया कोई भईया हमारे छोटे गांव में ऐसी कोई हरकत करता, तो क्या, हम वह बर्दाश्त करते हैं क्या, आप बताओ? फिर यह कैसे बर्दाश्त करते? यहां से बढ़ते-बढ़ते लड़ाई दूसरी ओर ले गये, यदि किसी लड़के को पुलिस पकड़ती तो वह कहते कि हमारे साथ नस्लीय भेदभाव होता, बहुत कुछ हुआ बाई जी, आस्ट्रेलिया के झंडे इंडिया में जलाये जा रहे हैं और उसकी आंच हमें यहां लग रही थी, बाई जी, जब हम इस सुंदर और विकसित देशों में रोज़ी-रोटी के लिए आयें तो यहां का रहन-सहन भी तो सीख लें, इंडिया वाली गंदी आदतें वहां क्यों छोड़कर नहीं आये? यदि यहीं सब यहां आकर भी करना था तो फिर इंडिया में ही रह जाते?'

हैप्पी की बात अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि विकी अपनी बात करने के लिए बहुत उतावला हो गया।

हैप्पी ने अपने खाली हो चुके गिलास में बीयर डालनी शुरू कर दी थी। विकी बताने लगा, 'बाई जी, मेरी भी सुनो, आपको मैं बताता हूं, मेरी आंखों

देखी हुई बात है यह बिलकुल, मैं भी उस दिन ट्रेन में सफर कर रहा था, अभी नया-नया इंडिया से आया था, अपना एक देसी वीर ट्रेन में चक्कर लगाता फिर रहा था। कान को फोन लगाया हुआ था और जोर-जोर से बात कर रहा था, कभी सीट पर बैठता तो कभी उठकर कहीं को चल पड़ता, सभी मुसाफिर उसकी ओर हैरानी से देखते रहे, फिर वह खाली पड़ी सीट पर जा बैठा। अपने दोस्त को फोन लगाया हुआ था, एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी, उसके आगे पड़ी खाली सीट पर एक गोरी आ बैठी। देसी ने अपने दोस्त को कहा यार फोन काट अब, मेरे सामने एक बड़ा कमाल का पुर्जा आकर बैठ गया, लो अब फिर उसकी मूवी बना लूं, वह गोरी जैसे ही अपनी सीट पर बैठी थी उसने बैठते ही किताब खोल ली और पढ़ने लगी थी। लो जी हमारे देसी भाई ने उसकी छातियों की मूवी बनाई और अपने दोस्त को भेज दी और जब उसने अंग्रेज लड़की की तस्वीर खींची तो उसने एक पल उसकी ओर थोड़े गुस्से से देखा कि शायद वह इतना करने के बाद हट जायेगा और वह फिर किताब पढ़ने में मशगूल हो गई। परंतु वह देसी भाई भला कहां पीछे हटने वाला था? जब वह तीसरी बार भी उसकी तस्वीर खींचने से नहीं हटा तो अंग्रेज लड़की आग बबूला हो गई। वह अपनी सीट से उठी और उसके हाथ से फोन छीनकर ट्रेन से बाहर फैंक दिया। हमारे देसी भाई से सहन नहीं हुआ और वह शोर मचाने लगा। इतने में पुलिस वाले आ गये, पूछने लगे क्या तकलीफ है तुम्हें? तंग-परेशान अंग्रेज लड़की कहने लगी मैं बताती हूं इसकी तकलीफ के बारे में। जब पूरी बात पुलिस वालों को पता चली तो उन्होंने अगले स्टेशन में ही उस देसी युवक को उतार दिया। अब आप ही बताओ बाई जी कि यह हमारी करतूतें अच्छी हैं या बुरी? फिर यह कहते हैं कि हमें पक्का नहीं करते, कैसे पक्का कर दें ऐसे जैसों को? हम इन देशों में आ-आकर यह सब कुछ कर रहे हैं तो बताओ यह पक्के किस आधार पर करें? बुरी करतूतों के आधार पर तो पक्के करने से रहे बाई जी, अंग्रेज हमारे काम की कदर करते हैं और हमारे अपने भाई लोग अच्छे काम-काज वाले बिजनेसमैन हैं जो वह तो हमारे काम की कदर नहीं करते बल्कि शोषण करते हैं, काम करवाते हैं और पैसे देते हुए तकलीफ होती है इन्हें? बाई जी गोरों की निजी जिंदगी है, वह किसी की जिंदगी में दखल नहीं देते और ना ही किसी का दखल बर्दाश्त करते हैं और हम पंजाबी पता नहीं क्यों हर बात में अपनी टांग जरूर फंसाते हैं।'

विकी अपनी बात सुना कर बाथरूम की ओर चला गया था। पास बैठी स्मृति भी भला कैसे चुप रह सकती थी? कहने लगी वीर जी, हमारे लोग बेशक कहीं चलते जायें, अपनी उलटी-सीधी आदतें साथ ले जाने के लिए अटैची में सबसे पहले डालते हैं, यह हम नहीं छोड़ सकते, भला कहीं भी चले जायें। वीर जी हमने तो यहां आकर गोरों को सिखाना शुरू कर दिया है कि आओ हमसे सीखो की कामचोर कैसे बनें, हेराफेरी कैसे करनी है, हमारे लोग तो अपने आदमी को ही ठगने में समय नहीं लगाते, हमारे लोगों ने ही बल्कि अपनों के साथ सबसे अधिक ठगी की हैं, गोरों ने कौन सी ठगी मारी है? आप खुद पड़ताल करके बताओ, गोरों ने यह समझा था कि पंजाबियों की कौम बहुत बहादुर और मेहनती है, तभी हमारे लिये उन्होंने रास्ते खोले थे और कहा था कि यह हमारे देश में आकर हमारे बे-आबाद पड़े देश को आबाद करने और मेहनत से काम करके अपना और हमारा नाम चमकायें, साथ-साथ पढ़ें और हमारे लोगों ने आकर यह सोचा कि चलो, सिर्फ पैसा कमाओ, बाकी बातें बाद में देखेंगे, पढ़ने भी ना लगे। कोई आया तो कुकरी कोर्स करने, पर यहां आकर दिन-रात चलाने लगा टैक्सी, जब हम इन देशों के कानूनों को नहीं मानते तो यह कैसे पक्के कर दें? जो कोर्स करने हम यहां आये थे वह काम यहां आये आधे से अधिक लोग नहीं कर रहे?'

स्मृति की बातों में मुझे सच्चाई लगी थी। ऐसी ही बातें मुझे अपने कुछ अन्य दोस्तों से भी सुनने को मिली थी। जब स्मृति बोलती थी तो उसका चेहरा लाल हो जाता था। जब विकी और हैप्पी बातें करते रहे थे तो तब स्मृति नहीं बोली और सिर्फ सुनती ही रही थी। अब वह बोल रही थी और वह पास बैठे बहुत ध्यान से सुन रहे थे और बीच-बीच में कह रहे थे, स्मृति तुम बिलकुल ठीक कह रही हो, बिलकुल सही कहना है तुम्हारा।

वह आगे बोलने लगी, 'यह यहां मेरे जैसी लड़कियों से पूछ कर देखो, एक बात और बताऊं वीर जी, हमारे लड़के तो यह भावना समझते ही नहीं कि यह हमारी ही बेटी-बहनें हैं और वहीं से आई हैं, वह तो हमें जाते देखकर तंज कसते हैं...कई बार चिल्लाते हैं हाय ओ पुर्जा, हाय ओ पुर्जा करते हैं, यदि यही सबकुछ यहां आकर करना था तो इंडिया में ही रहते, यह इतने सुंदर-सुंदर देश हमारे लोगों के लिए नहीं बने, बल्कि यह तो समझदार और सभ्य लोगों के लिए बने हैं, हम लड़कियों से इन गोरों ने तो कभी भद्दा

मजाक नहीं किया, और ना ही कभी यूं चीखें मारी, बल्कि यह तो सम्मान के साथ हैलो-हाय कहकर या मुस्कुरा कर गुजरते हैं। हमारे लोग इनके मुस्कुराने को बुरी भावना से लेते हैं, बस कुछ और मत पूछो वीर जी, मैं आपको सच कहती हूं कि यहां कभी नस्लीय भेदभाव नहीं हुआ, जो कुछ हुआ भी तो इन सब बातों के कारण ही हुआ, बाद में हमारी मीडिया ने इसे नस्लीय भेदभाव का नाम दे दिया, वैसे ही हमारे इंडिया में बैठे लोग जैसे-जैसे इन समाचारों को पढ़ते, बिना पड़ताल किये विश्वास कर लेते हैं। वीर जी सच्ची बात बताऊं? यह मीडिया वाले सिर्फ एक दो ही ऐसे लोग थे, जो अनपढ़ पत्रकार थे, जो सूझता था...वही लिख-लिखकर भेजते जाते थे और वहां अखबार में छापते जाते थे और असलियत की ओर कोई नहीं देख रहा था, आप इंडिया से आये, अब यहां लोगों से पूछो कि वह नस्लीय भेदभाव थे या फिर क्या था वह सारा शोर? इस बारे में इंडिया जाकर कुछ लिखे?'

स्मृति की कही बातों के बारे में देर रात तक बिस्तर पर पड़ा सोचता रहा था।

# कनाडा के कंधों पर

**कुछ याद रह जाते हैं...**

वर्ष 2001 में गर्मियों के दिन थे। मुझे कनाडा से घूमने-फिरने का निमंत्रण आया था। तब तक तो मैंने पूरी दिल्ली भी नहीं देखी थी, बस...दो-तीन बार ही दिल्ली गया होऊंगा और अब यहां से सीधा कनाडा के शहर टोरांटो उतरना था। निमंत्रण-पत्र देखकर मैं अचंभे में पड़ गया। कैसे लोग होंगे वहां? ऊंची और रंगीन इमारतें, समुद्र और गोरों की अखबारों-पत्रिकाओं में छपी हुई तस्वीरें आंखों के आगे घूमने लगी।

जब कनाडा जाने की बात घर में चली तो घर वाले फिक्रमंद होने लगे कि हमारा बेटा जहाज कैसे चढ़ेगा? मेरी पड़ोस में रहने वाली ताई मां को कहने लगी, 'सुना है जहाज तो बहुत ही बड़ा होता है, आधे गांव जितना, कई बार तो जहाज उड़ते-उड़ते गिर भी पड़ता है, वाहेगुरु-वाहेगुरु...हे ईश्वर सुख रखना।'

ताई के प्रवचन सुनकर मां कुछ नहीं बोली। पास में बिछी चारपाई पर बैठे पिता फिक्रमंद होने लगे, 'हां सुना है बहुत दूर है कनेडा, कोई रेल-रूल नहीं जाती कनेडा को, जहाज के पंगे की बजाय रेल में ही चले जाओ।'

ख़ैर! मैं कनेडा जाने की तैयारी करने लगा। दिल में दो तरह के अहसास थे, एक अद्भुत सा चाव कि नयी दुनिया, नये लोग और नई धरती देखने जा रहा हूं, दूसरा फिक्र भरा एहसास कि कोई अड़चन ही ना आ जाये और वह बात हो जाये कि अंगूर खट्टे हैं।

वीज़ा मिलने और फिर टिकट लेने और तैयारी करने की कथा-कहानी कहने की बजाय, पाठकों को सीधा एयरपोर्ट ले चलूं तो अच्छा है।

लुफ्थांसा एयरलाइन का जहाज था और 5 अगस्त की रात को ढाई बजे उड़ान भरना था। पहली बार एयरपोर्ट के अंदर जा रहा था। कनाडा जा पहुंचने के चाव में दिल और भी ठाठा मारने लगा था। अपना सामान ट्राली पर रखकर, काऊंटर पर जा पहुंचा। बैग को तोला गया और ठिकाने जा

रखा गया। मेरे पास हैंडबैग रह गया। इसमें तकरीबन आठ किलो भार था। जहाज में बैठने के लिए बोर्डिंग पास लेकर फिर इमीग्रेशन काऊंटर पर जाने के लिए लाइन में जा खड़ा हुआ।

गांव में फोन लगाया, अध-जगे बापू को बताया, 'सब काम ठीक हो गये हैं, अब मैं जहाज चढ़ूंगा।' बापू ने कहा, 'अच्छा बेटा...ध्यान से चढ़ना।' फोन करने के बाद मैं वेटिंग हाल में आकर बैठा। मेरा एक साथी भी आया और मेरे से अगली कुर्सी पर बैठते हुए बोला, 'दोस्त, इमीग्रेशन करवाते वक्त मैं आपके पीछे खड़ा हुआ था, आप जर्नलिस्ट हो, उन्होंने तो आपको झट से फारिग कर दिया, मुझे तो बहुत परेशान किया, कहने लगे तुम्हारा पासपोर्ट असली नहीं है, फिर कहने लगे, पैसे दो, मैंने तो कुछ भी नहीं दिया...साले ठग।'

मेरे साथी उस लड़के ने अपना नाम अमनदीप सिंह बौबी बताया, वह जर्मनी जा रहा था। जालंधर के पास के गांव वरिआणा से था और छह वर्ष से जर्मनी में रहता था। बौबी ने फ्रैंकफोर्ट उतर कर आगे ड्रैनस्टन जाना था, वहां उसका रेस्तरां था।

बौबी बहुत ही मिलनसार और हंसमुख स्वभाव वाला था। बात-बात पर भाजी-भाजी कहते उसका मुंह नहीं थकता था।

जहाज स्टार्ट हुआ, पीछे से हिला और फिर रन-वे पर चढ़कर जोर से शोर मचाता हुआ दौड़ने लगा। खूब दौड़कर पहले अगला हिस्सा उठाया और फिर पिछला उठाते हुए उड़ान भर ली। मैं खुश था और दिल से उन सभी लोगों को धन्यवाद दे रहा था, जिन्होंने मुझे जहाज चढ़ाया था। खिड़की से नीचे देखा, दिल्ली यूं लग रही थी मानो किसी शादी वाले घर में छोटे-छोटे बल्बों का जाल बिछा हुआ होता है या यूं मानो टिमटिमाते तारों की थाली भरी पड़ी होती है। मैं नीचे देख रहा था। बौबी बोला, 'बस करो भाजी, अब क्या नीचे ही देखते रहोगे? सुनाओ कोई बातचीत।'

मैं और बौबी बातें करने लगे। जर्मनी लड़कियां ट्राली को धकेलती, मुस्कुराहट बिखेरती खाने-पीने का सामान बांटने लगी। बौबी बोला, 'भाजी, रैड-वाईन पियोगे या व्हिस्की? मैंने कहा, 'जो तुम...।'

हमने रैड-वाईन ले ली। आस्ट्रेलियन अंगूरों की रैड-वाईन स्वाद थी। सुरूर देने लगी। बौबी की बातों के गोले उधड़ने लगे। वह अपने जर्मनी में संघर्ष की दास्तां सुनाने लगा। तीन-तीन ग्लास वाईन और फिर गर्मा-गर्म खाना

खाने के बाद हम गर्म चादर और छोटे सिराहने लेकर सो गये।

------

मेरी नींद खुल गयी थी।

जहाज और ऊंचा उठा और जोर से हांफने लगा। काफी मुसाफिर जाग गये थे, जैसे जहाज की कंपकंपाहट ने सभी को हिलाकर जगा दिया हो।

जहाज के कप्तान ने स्पीकर के जरिये बताया, 'अब हम समुद्र के ऊपर से गुज़र रहे हैं, इसलिए जहाज को थोड़ा और ऊपर उड़ाना पड़ रहा है...निश्चिंत रहें और सीट बैल्ट बांध लें।'

मेरे साथ बैठा बौबी बोला, 'भाजी समुद्र के पानी में बहुत ज्यादा खिंचाव होता है, कितनी शक्ति है...ऊपर से जा रही चीज़ को पानी अपनी ओर खींच लेता है, तभी जहाज कांपने लगा है।'

मैं समुद्र में डूबकर मर जाने के डर के चलते काफी कुछ सोचने लगा। यदि मरना था तो गांव के कुएं में डूबकर मर जाता, घर वाले निकाल तो लेते, यहां से कौन निकालेगा?

'भाजी, क्या सोच रहे हो, सुनाओ कोई बात?'

उसकी बात सुनकर मैं सीट पर ठीक से बैठ गया। मैं जहाज में पहली बार चढ़ा था। इससे पहले जहाज को सिर्फ आकाश में उड़ते हुए देखा था। गिद्ध की तरह, ऊंचे-ऊंचे उड़ते घुर्र...गूं...घुर्र...गूं गूंजते जा रहे जहाजों को उतना समय निहारता रहता था, जितना समय वह नजरों से ओझल ना हो जाते।

'भाजी आप कैनेडा से वापिस लौटते हुए मेरे पास जर्मनी जरूर आना...मेरे घर रहना और जर्मनी घूमना आप।'

वह मुझे आमंत्रित कर रहा था। वह जर्मनी से छह साल बाद अपने गांव आया था और जर्मनी में पक्का हो चुका था। कहने लगा कि पंजाब के बहुत सपने आते हैं। अब गांव रहा हूं तो एक दिन भी जर्मनी का सपना नहीं आया। उम्र में वह मुझसे एक या डेढ़ साल बड़ा था।

'यह लो मेरी एक किताब, ड्रैनस्टन जाकर पढ़ना, फिर बताना कैसी लगी तुम्हें।' मैंने उसे अपनी नयी छपी किताब 'मैं था जज का अर्दली' दी। उसने बड़े चाव से अपने छोटे बैग के अंदर रख ली।

'भाजी मैं आपको रोज ही फोन करूंगा...सुन लिया करोगे मेरा फोन?' हमने अपना पता और फोन नंबर एक दूसरे को दे दिये।